



ॐ श्री ॐ

# सन्मति-वाणी

[ भ्रमण भगवान् महावीर के वचनामृत ]



सम्पादक —

भ्वर्गीय स्वामीनी श्री जोरावरमलनी महारान क  
सुशिर्य पण्डित मुनिश्री मिश्रीमलजा  
महारान (मधुकर)



१९५३

---

प्रथमावृत्ति	१०००
मूल्य III) चारह आने	
धीर सं०	२४५८
स०	२०१०

---

मुद्रक —

श्री जालमसिंह मेड़तयाल के प्रयास से  
श्री गुरुकुल प्रिन्टिंग प्रेस,  
ध्यावर में मुद्रित ।

समर्पण



सन्मति के  
सन्देश-वाहकों  
को



# सन्मति-वाणी

## विषयानुक्रमिका



न०	विषय	पृष्ठ	न०	विषय	पृष्ठ
१	मगल मुक्त	१-८	७	आयमुत्त	६४-७१
२	धम्म मुक्त	४-१०	८	काममुत्त	७२-७८
३	त्रिणय-मुक्त	११-१५	९	कसायमुत्त	७९-८०
४	ति-रयण मुक्त	१६-२६	१०	फामविजयमुत्त	८१-८८
५	तय-मुक्त	२७-३१	११	अप्पमायमुत्त	८९-१-४
६	वय-मुक्त	३२-६४	१२	समणमुत्त	१०३-१११
(१)	अहिसायय		१३	असरणमुत्त	११३-११८
(२)	मच्चयय		१४	पामणामुत्त	१२९-१२२
(३)	अतणुगवय		१५	विधिहमुत्त	१०३-११०
(४)	वमचेरवय				
(५)	अपरिमाहवय				
(६)	अरामोयणवय				



# सन्मति-वार्ता—



श्री माणिकरावजी बगला वरान्धे सुपुत्र  
 श्री हमरावजी बगला  
 मूलनिवास—'मनगा'  
 यत्तमाननियाम—'शाहपूर' (जिला धीजापुर)



## जीवन-परिचय



श्रीमान् सेठ माण्डवचन्दजी सोमणा (नागौर) मारवाड के रहने वाले हैं। आपके दादाजी श्रीयुत खूबचन्दजी रतनचन्दजी सोमणा से बागलकोट (बिजापुर) व्यापारार्थ गये थे। श्रीमान् माण्डवचन्दजी के पिताजी श्री जटावमलजी ने बागलकोट में बहुत अच्छी रयाति प्राप्त की। इस समय आपकी फर्म का नाम भी जटावमल माण्डवचन्द के नाम से चल रहा है।

श्रीयुत वेतालाजी के सन्तानों में एक पुत्र भी हंसराजजी और तीन पुत्रियाँ—सजनबाई, चचलबाई और शातिबाई हैं।

श्रीमान् वेतालानी धर्म के प्रति पूर्ण भ्रद्धा रखने वाले थावक हैं। साधु सतों के प्रति भी आपकी पूर्ण भ्रद्धा है। व्यापार आदि का अधिक काम होने पर भी आप वर्ष में एक बार साधु सतों के दर्शनार्थ मारवाड आदि देशों में अवश्य जाते हैं।

श्रीयुत वेतालाजी ने 'सन्मति-वाणी' के प्रकाशन में जो २२५) रुपयों की सहायता दी है, एतदर्थ आपको धन्यवाद। हम आप से आशा करते हैं कि भविष्य में भी आप इसी प्रकार से साहित्य सेवा करते रहेंगे।

—प्रकाशक



$$\frac{1}{x^2} = x^{-2} = -2x^{-3} = -\frac{2}{x^3}$$

The following table shows the derivatives of various functions. The first column lists the function, the second column lists its derivative, and the third column lists the function again for reference.

Function	Derivative	Function
$x^n$	$nx^{n-1}$	$x^n$
$x^{-1}$	$-x^{-2} = -\frac{1}{x^2}$	$x^{-1}$
$x^{-2}$	$-2x^{-3} = -\frac{2}{x^3}$	$x^{-2}$
$x^{-3}$	$-3x^{-4} = -\frac{3}{x^4}$	$x^{-3}$
$x^{-4}$	$-4x^{-5} = -\frac{4}{x^5}$	$x^{-4}$
$x^{-5}$	$-5x^{-6} = -\frac{5}{x^6}$	$x^{-5}$
$x^{-6}$	$-6x^{-7} = -\frac{6}{x^7}$	$x^{-6}$
$x^{-7}$	$-7x^{-8} = -\frac{7}{x^8}$	$x^{-7}$
$x^{-8}$	$-8x^{-9} = -\frac{8}{x^9}$	$x^{-8}$
$x^{-9}$	$-9x^{-10} = -\frac{9}{x^{10}}$	$x^{-9}$
$x^{-10}$	$-10x^{-11} = -\frac{10}{x^{11}}$	$x^{-10}$
$x^{-11}$	$-11x^{-12} = -\frac{11}{x^{12}}$	$x^{-11}$
$x^{-12}$	$-12x^{-13} = -\frac{12}{x^{13}}$	$x^{-12}$
$x^{-13}$	$-13x^{-14} = -\frac{13}{x^{14}}$	$x^{-13}$
$x^{-14}$	$-14x^{-15} = -\frac{14}{x^{15}}$	$x^{-14}$
$x^{-15}$	$-15x^{-16} = -\frac{15}{x^{16}}$	$x^{-15}$
$x^{-16}$	$-16x^{-17} = -\frac{16}{x^{17}}$	$x^{-16}$
$x^{-17}$	$-17x^{-18} = -\frac{17}{x^{18}}$	$x^{-17}$
$x^{-18}$	$-18x^{-19} = -\frac{18}{x^{19}}$	$x^{-18}$
$x^{-19}$	$-19x^{-20} = -\frac{19}{x^{20}}$	$x^{-19}$
$x^{-20}$	$-20x^{-21} = -\frac{20}{x^{21}}$	$x^{-20}$

## दो शब्दः—

जब मैं शान्तिनिकेतन में विद्याभ्यास कर रहा था तब शास्त्र-स्वाध्याय के साथ साथ प्राकृत-भाषा का भी क्रमिक अध्ययन हो सका। ऐसी 'प्राकृत-पाठाली' प्रकाशित करने की हृदयगत भावना थी। 'महावीर-वाणी' जो सरस्वती साहित्य मण्डल, दिल्ली तथा भारत जैन महामण्डल, वर्धा द्वारा प्रकाशित हुई है—के प्रकाशन से इस भावना की आशिक ही पूर्ति हो सकी है। क्योंकि उसमें प्राकृत-भाषा का व्याकरण, तुलनात्मक टिप्पण तथा अन्य उपयोगी परिशिष्ट दिये नहीं जा सके हैं। प्राकृत भाषा के बोध के साथ भगवान् महावीर की अमर वाणी जनता सरलतापूर्वक समझ सके इस दृष्टि से यह 'समति-वाणी' का संकलन-संपादन किया गया है। प्राकृत-भाषा के अभ्यासी तथा जिज्ञासु छात्रों के लिए यह संकलन विशेषोपयोगी सिद्ध होगा ऐसी आशा है। समति-वाणी के बाद महावीर-वाणी तत्पश्चात् धर्मसंग्रह, धर्मकथाएँ और चरितावली प्राकृत में प्रकाशित करने की भावना है।

प० मुनिश्री विश्वीलालजी महाराज सा० (मधुकर) ने अति परिश्रम के साथ 'समति-वाणी' का संपादन करके जनता का बहुत ही उपकार किया है। 'प्राकृत पाठाली' के प्रकाशन का स्वप्न सिद्ध हो यही अतरेच्छा है।

विनीत—

महावीर जयन्ती  
२५७६

}

शान्तिलाल वनमाली सेठ

— — — — —

—

—

—

—

—

## अपनी बात:—

प्रस्तुत पुस्तक का नाम "स मति-वाणी" है। 'स-मति' भगवान् महावीर का नाम है। इसमें भगवान् महावीर की वाणी का सकलन किया गया है, इसलिए इसका 'स-मति-वाणी' यह नामकरण सस्कार कभी अनुपयुक्त तो न होगा ?

भगवान् महावीर वीतराग थे, सर्वज्ञ थे अहिंसा के अवतार थे और सत्य के स-देशक थे।

भगवान् के उपदेश बढ़ सरल, सरस, सुमधुर, संस्कृति के संयोजक और विश्व प्रेम की भावना को जागृत करने वाले होते थे।

भगवान् के उपदेशों का एक मात्र लक्ष्य था—जन जन के हृदय में विश्व प्रेम की भावना को जागृत करना। भगवान् ने अपने अन्तिम धर्मप्रवचन में भी कहा, जो मुमुक्षु है उसे "अप्याण सच्चमसिञ्जा मेत्ति नृणामु कप्पम ।" अर्थात् सत्य की रोज करनी चाहिए और विश्व के साथ मैत्री का भाव रखना चाहिए।

अहिंसा और सत्य की अपनाकर ही प्रत्येक प्राणी अपने हृदय में विश्व प्रेम की भावना को जागृत कर सकता है।

विश्व प्रेम की भावना एक ऐसा साधन है, जिससे जीवन में शान्ति का साम्राज्य स्थापित किया जाता है।

ससार का प्रत्येक प्राणी शान्ति का अभिलाषी है, परन्तु उसे यह पता नहीं है कि शान्ति का स्रोत कहाँ बहता है ? वह यह नहीं जानता कि शान्ति को प्राप्त करने का असली और अमोघ उपाय क्या है ?

• आज संसार में विश्वशान्ति के लिए बड़ी बड़ी योजनाएं बनाई जाती हैं। उसके लिए बड़े बड़े सम्मेलन सयोजित किए जाते हैं। परन्तु यह विश्वशान्ति कहां ? जिघर देखो उघर प्रलय विस्फोट, प्रणाराश और हाहाकार ही हाहाकार। यहाँ यह प्रर होता है, ऐसा क्यों ? इसका उत्तर बिलकुल सीधा है। आज दुनिया ने विश्व शान्ति के असली उपाय को नहीं अपनाया है विश्वशान्ति का असली साधन है, अहिंसा और उससे पनप वाली विश्व प्रेम की भावना।

यह एक निश्चित सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति के हृदय विश्व प्रेम की भावना के धाने से ही विश्व भर में शान्ति व स्थापना हो सकती है।

व्यक्ति से समाज और समाज से राष्ट्र का निर्माण होर है। विश्वशान्ति की स्थापना के लिए विशुद्ध समाज और विशु राष्ट्र की दास आवश्यकता होती है। विशुद्ध समाज अं विशुद्ध राष्ट्र की आधारशिला है व्यक्ति का विशुद्ध भावना जिस समाज के व्यक्तियों ने प्रतिरोध, हिंसा और पशुबल व त्याग कर अहिंसा क आधार पर अपने जीवन का निर्मा किया है, वस्तुतः बही विशुद्ध समाज है और उससे बनने वाह राष्ट्र भी विशुद्ध राष्ट्र।

समाज और राष्ट्र की समृद्धि को समुच्चल बनाने के लि व्यक्ति के जीवन को सुसंस्कृत बनाना सदा समयापेक्षित रहता है यह मानी हुई बात है कि जब तक व्यक्ति की भावना ऊँची नह उठती, तब तक समाज और राष्ट्र का कभी उत्थान नहीं ह सकता। इसलिए विशुद्ध समाज और विशुद्ध राष्ट्र का निर्माण करने के लिए अपने व्यक्तिगत जीवन को उच्चतम बनान अत्यंत आवश्यक है।

भगवान् महावीर ने यही किया। पहले स्वयं उन्होंने अपने जीवन को ऊँचा उठाया। फिर वे धर्म के एक महान् ज्योतिर्धर नेता के रूप में संसार के सामने आए। उन्होंने मानव समाज को शांति का पारिविक मार्ग बताया।

भगवान् ने मानव समाज को जो उपदेश दिया उसका सार यह था कि 'प्रत्येक मनुष्य का परम लक्ष्य होना चाहिए— मोक्ष। और मोक्ष के लिए चाहिए हृदय में विश्व प्रेम। विश्व-प्रेम की भावना को जागृत करने के लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहवृत्ति, क्षमा, सरलता, विनय, तप, त्याग आदि धर्म के स्वाम अर्गों को अपनाना चाहिए।' आदि आदि।

भगवान् के उपदेश उस समय जितने आवश्यक थे, आज भी उनके उपदेशों की उतनी ही आवश्यकता है।

आज का मानव—यह मानव जो चोर बाजारी, काला बाजार और भ्रष्टाचार दिन प्रतिदिन बढ़ा रहा है, और इससे संसार में जो अशांति की ज्वाला प्रज्वलित हो रही है, उसका प्रशमन भगवान् महावीर के उन्हीं उपदेशों से ही किया जा सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक, भगवान् महावीर के उन्हीं उपदेशों का एक छोटा सा सङ्ग्रह है। आज के मानव जगत् ने ऐसे संकलनों को अधिक पसन्द किया है।

इस सङ्ग्रह में सूक्तियों के संप्रह की ओर ही अधिक ध्यान दिया गया है। आगम के गद्य-पद्य विभाग में संचित सूक्तियों अपनी आवश्यकता के अनुसार इनमें संगृहीत की गई हैं। जिस पद्य का पूरा भाग सूक्ति रूप में था, उसे उस रूप में और जिसका आधा या एक अंश सूक्ति रूप में था उसका वही अंश यहाँ उद्धृत किया गया है।

यहाँ जो पद्यों का अनुवाद रक्का गया है, वह श्रीयुत पण्डित बेचरदासजी दोशी द्वारा सम्पादित 'महावीर वाणी' से लिया गया है। जहाँ उचित समझा गया है वहाँ कुछ-बहुत कम परिवर्तन भी किया गया है। जो पद्य 'महावीर वाणी' में नहीं थे, उनका और गद्य विभाग का अनुवाद अपनी ओर से किया गया है।

वस्तुतः यह सरलन मेरा नहीं है। यह है गुरुकुल प्रेस ब्यावर के मैनेजर श्रीयुत शांतिलाल बनगाली शेट का। व होने मुझे इसे सम्पादित करन के लिए दिया और मैंने अपनी योग्यता के अनुसार इसका सम्पादन किया। मरी साहित्यिक प्रवृत्तियों में मुझे पूज्य श्री गुरुदेव श्री हनारीमलजी महाराज साहब से प्रेरणाबल और आशीर्षल मिलता ही रहता है। जिनका उपकार से चञ्चल होना मेरे लिए अति कठिन है।

'संमति-वाणी' के सम्पादन में मुझे श्रीयुत अद्वैत कवि वर उपाध्यायजी श्री अमरचन्द्रजी महाराज के सुशिष्य पण्डित मुनि श्री विजय मुनि जी का और ब्यावर गुरुकुल के प्रधान अध्यापक श्रीयुत पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिज का पूरा सहयोग मिला है, इसलिए इन दोनों महानुभावों का मैं बहुत आभारी हूँ।

अन्त में धनस्थ होने के नाते इस सम्पादन में अनेक छुटियों का हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है। पाठकों से इसकी क्षमायाचना करता हूँ।

जयमल्ल जैन पौषशाला भवन  
नागौर (मारवाड़)  
ता० २-३-१९५२

मधुकर मुनि

[ १ ]

मगलसुत्त

[ मगलसूत्र ]



## नमोवकारो

नमो अरिहताय ।

नमो सिद्धाय ।

नमो आयरियाय ।

नमो उवग्ग्हायाय ।

नमो लोण सत्र्यसाह्वय ।

पमो पच नमुक्कारो, सत्र्य पाव-पयासणो ।

मगलाय च सत्तेमि, पढम हवद् मगल ॥

—पच प्रति० सूत्र १ ]

## मगल

अरिहता मगल । सिद्धा मगल ।

साह मगल । केवलि-पत्तो धम्मो मगल ।

## लोगुत्तमा

अरिहता लोगुत्तमा । सिद्धा लोगुत्तमा ।

साह लोगुत्तमा । केवलि-पत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

## सरण

अरिहते सरण पवज्जामि ।

सिद्धे सरण पवज्जामि ।

साह सरण पवज्जामि ।

केवलि पत्त च धम्म मरण पवज्जामि ।

## नमस्कार

नमस्कार हो अरिहत्तों को,  
 नमस्कार हो सिद्धों को  
 नमस्कार हो आचार्यों को,  
 नमस्कार हो उपाध्यायों को,  
 नमस्कार हो लोक के सर्व साधुओं को,  
 यह पंच नमस्कार समस्त पापों का नाश करने वाला है  
 और सब मगलों में प्रथम (श्रेष्ठ) मगल है ।

## मगल

अर्हन्त मगल हैं,  
 सिद्ध मगल हैं,  
 साधु मगल हैं,  
 केवली भापित धर्म मगल है ।

## लोकोत्तम

अर्हन्त लोक में उत्तम हैं,  
 सिद्ध लोक में उत्तम हैं,  
 साधु लोक में उत्तम हैं,  
 केवली भापित धर्म लोक में उत्तम है ।

## शरण

अर्हन्ता की शरण स्वीकार करता हूँ,  
 सिद्धों की शरण स्वीकार करता हूँ,  
 साधुओं की शरण स्वीकार करता हूँ,  
 केवली-भापित धर्म की शरण स्वीकार करता हूँ ।

## नमोऽकारो

नमो अरिहताय ।

नमो सिद्धाय ।

नमो आयरियाय ।

नमो उवग्भायाय ।

नमो लोए सवसाहूय ।

एमो पच नमुक्कारो, सव पाव-पणासणो ।

मगलाय च सवेसि, पडम हवइ मगल ॥

—पथ प्रति० सूत्र १ ]

### मगल

अरिहता मगल । सिद्धा मगल ।

साह मगल । केवलि-पत्ततो धम्मो मगल ।

### लोगुत्तमा

अरिहता लोगुत्तमा । सिद्धा लोगुत्तमा ।

साह लोगुत्तमा । केवलि-पत्ततो धम्मो लोगुत्तमो ।

### सरण

अरिहते सरण पवज्जामि ।

सिद्धे सरण पवज्जामि ।

साह सरण पवज्जामि ।

केवलि पत्त धम्म सरण पवज्जामि ।

## नमस्कार

नमस्कार हो अरिहंतों का,  
 नमस्कार हो सिद्धों को,  
 नमस्कार हो आचार्यों को,  
 नमस्कार हो उपाध्यायों को,  
 नमस्कार हो लोक के सर्व साधुओं को,  
 यह पद्य नमस्कार समस्त पापों का नाश करने वाला है  
 और सब मगलों में प्रथम (श्रेष्ठ) मगल है।

## मगल

अहंस्त मगल है,  
 सिद्ध मगल है,  
 साधु मगल है,  
 केशवी भाषित धर्म मगल है।

## लोकोत्तम

अहंस्त लोक में उत्तम है,  
 सिद्ध लोक में उत्तम है,  
 साधु लोक में उत्तम है,  
 केशवी भाषित धर्म लोक में उत्तम है।

## जरण

अहं-तों की शरण स्वीकार करता है,  
 सिद्धों की शरण स्वीकार करता है,  
 साधुओं की शरण स्वीकार करता है,  
 केशवी भाषित धर्म की शरण स्वीकार करता है।



[२]

धम्म-सुत्त

[धर्म-सूत्र]

७

३११

( १ )

धम्मो मगल-मुत्तियुद्ध,  
अहिंसा सनमो तवो ।  
देवा वि त नमसन्ति,  
जम्म धम्मे सया मणो ।

[ पद्य० अ १ गा २ ]

( २ )

धम्मो सुद्धम्म चिट्ठई ।

[ उक्त अ ३ गा १२ ]

( ३ )

एगो हु धम्मो नरदेव ! ताण

[ उक्त अ १४ गा ४० ]

( ४ )

धम्म चर सुदुच्चर

[ उक्त अ १८ गा १३ ]

( ५ )

जा जा वच्चइ रयणी,

न सा पडिनियत्तई ।

धम्म च कुणमाणस्स,

सपला जन्ति सइयो ॥

[ उक्त अ १४ गा २५ ]

( १ )

धर्म श्रेष्ठ मंगल है और वह है—घड़िंसा, मयम और तप ।  
जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा सख्ग्न रहता है,  
उसे देवता भी नमस्कार करते हैं ।

( २ )

धर्म अपने आधारभूत शुद्ध पात्र में ही ठहरता है, अर्थात्  
सख्ग्न आत्मा ही धर्म का पाखन कर सकता है ।

( ३ )

हे राजन् !

एक मात्र धर्म ही सत्तार में शरण देने वाला है ।

( ४ )

दुश्चर धर्म का आचरण कर ।

( ५ )

जो राठ और दिन एक बार अतीत की ओर चले जात है,  
वे फिर कभी वापस नहीं आते, जो मनुष्य धर्म करता है,  
उसके वे राठ और दिन सख्ग्न ही जाते हैं ।



( ६ )

जरा जाव न पीडेइ,  
वाही जाव न वड्डुट्ट ।  
जाविदिया न हायति,  
ताव धम्म समायरे ॥

[ दश अ ङ गा ३६ ]

( ७ )

चदज्ज देह, न हु धम्म-सामण ।

[ दश म चू गा १७ ]

( ८ )

सयय मूँ धम्म नाभिचारण्ह ।

[ चाघा म धु १ म २ ड ४ ]

( ९ )

सज्व-धम्म-परिभट्टो

स पच्छा परितप्पई,

[ दश म चूलि गा २ ]

( ६ )

जब तक बुढ़ापा नहीं सताता, जब तक व्याधिर्षो नहीं बन्तो,  
जब तक इन्द्रियो अशक्त नहीं हों, तब तक धर्म का  
आचरण कर लेना चाहिये, बाद में कुछ नहीं होने का ।

( ७ )

माशयान् शरीर का परित्याग कर के भा शरवत्र हर्ष का  
पालन करना चाहिये ।

( ८ )

मूढ मनुष्य धर्म के सम की नहीं समझ पाता ।

( ९ )

भोगाभिलाषी मनुष्य धर्म पथ से अट रहा बाद में  
परचात्ताप करता है ।



[ ३ ]

विणय-सुत्त

[ वि न य सु त्त ]

( १ )

धम्म विगुधो मृग,

[ इण च ६ उ १ गा २ ]

( २ )

विगुण उविग्ग अण्णग

इच्छतो द्विय-मण्णो,

[ इण च १ गा ६ ]

( ३ )

विषयी अविर्णियम्म,

संरसी विरीयम्म य ।

वस्सेय दुग्घो नय,

सिक्ख से अमिग-द्ध ॥

[ इण च ६ उ २ गा २१ ]

( ४ )

अह पण्दि टाणेदि,

जेत्ति सिक्खा न लब्भइ ।

अमा कोशा पमाण्य,

रोगेणाऽलम्भण्य य ॥

[ इण च ११ गा ३ ]

( १ )

धर्म का मूल आधार विनय अर्थात् नम्रता है ।

( २ )

अपनी आत्मा का हित चाहने वाले को  
विनय धर्म में स्थिर रहना चाहिए ।

( ३ )

‘अविनीत को विपत्ति प्राप्त होती है और विनीत को सम्पत्ति’  
ये दो बातें जिसने जान ली है, वही शिष्टा प्राप्त कर सकता है ।

( ४ )

इन पाँच कारणों से मनुष्य सच्ची शिष्टा प्राप्त नहीं कर सकता—  
अभिमान से,  
क्रोध से,  
प्रमाद से,  
कुष्ठ आदि रोग से  
और आलस्य से ।

( ५-६ )

अह अद्वहिं टाणेहि, सिन्हासीलि चि बुचद ।  
 अहम्सिरे मया दते, न य मम्ममुदाहरे ॥  
 नामीजे न विसीजे, न सया अदलोलुए ।  
 अमोहये सच्चरए, सीक्खासिलि चि बुचद ॥

[ उक्त अ ११ गा ४६ ]

( ७ )

आणा तिहेसकरे, गुरूण मुरयायकारए ।  
 दगियागारसपने, से विणीए चि बुचद ॥

[ उक्त अ १ गा ७ ]

( ८ )

न याऽपि मोक्खो गुरु-हीलयाए,

[ उक्त अ १ उ १ गा ७ ]

( ९ )

जम्मति ए धम्मपयाद सिक्खे,  
 तम्मन्ति ए वेणुइय पउजे ।  
 सक्कारए 'सिरसा पजलीथो,  
 फायगिरा मो ! मणसा य निच्च ।

[ उक्त अ १ उ १ गा १२ ]

( १-१ )

इन घाठ कारणों से मनुष्य शिष्या-शील कहलाता है —

हर समय हसने वाळा न हो,  
सतत इन्द्रिय निग्रही हो,  
दूसरों के मम को भेदन करने वाले  
वचन न धोलता हो  
सुशील हो,  
दुराचारी न हो,  
रस-खोलुप न हो,  
सत्य में रत हो, क्रोधी न हो, शान्त हो ।

( ७ )

जो गुरु की आज्ञा पाळता है, उनके पास रहता है, उनके इगितों तथा आचारों को जानता है वही शिष्य विनीत कहलाता है ।

( ८ )

गुरु की अवज्ञा करने वाले को मोक्ष कभी नहीं मिल सकता ।

( ९ )

शिष्य का कर्तव्य है कि—  
वह जिस गुरु से धर्म प्रवचन सीखे,  
उसकी निरन्तर विनय भक्ति करे ।  
मस्तक पर अञ्जलि घटा कर गुरु के  
प्रति सम्मान प्रदर्शित करे ।  
जिज्ञासा करके भी हो सके उसी तरह  
मन से, वचन से और शरीर से  
हमेशा गुरु की सेवा करे ।





[ ४ ]

ति-रयण-सुत्त

[ त्रिरत्न सूत्र ]

नाण

( १ )

पदम नाण तत्रो दया ।

[ दश० अ ४ गा १० ]

( २ )

नाणेण जाणइ भावे ।

[ उत्त० अ १८ गा ३५ ]

( ३ )

तत्थ पचविट् नाण, मुय आनिणिवोहिय ।

ओहि नाण तु तइय, मण नाण च केअन ।

[ उ० अ २८ गा ४ ]

( ४ )

नाणेण विणा न ह्वति चरण गुणा ।

[ उत्त० अ २८ गा ३० ]

( ५ )

जहा सुई समुत्ता पडिया वि ण विणम्मइ ।

तहा जीवो समुत्तो ससारै ण विणम्मइ ।

[ उ० अ २१ म् २१ ]

## ज्ञान

( १ )

प्रथम ज्ञान है, पीछे दया अथात् क्रिया ।

( २ )

मुमुक्षु आत्मा ज्ञान से जीवादिक  
पदार्थों को जानता है ।

( ३ )

मति, श्रुत, शब्धि, मन पर्याय और केवल  
इस भौतिक ज्ञान पाँच प्रकार का है ।

( ४ )

ज्ञान के बिना जीवन में चारित्र के  
गुणों की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

( ५ )

। जैसे सूत्र ( बोर ) से युक्त सुई गिर जाने पर  
। भी गुमती नहीं है, उसी प्रकार सूत्र (श्रुत ज्ञान)  
। से युक्त जीव भी संसार में दुःख नहीं पाता ।

## नाण

( १ )

पद्म नाण तयो दया ।

[ दश० अ ५ गा १० ]

( २ )

नाणेण जाणइ भावे ।

[ उ० अ १८ गा ३२ ]

( ३ )

तत्थ पचविट् नाण, मुय आभिणिबोहिय ।

ओहि नाण तु तइय, मण नाण च केरल ।

[ उ० अ २८ गा ५ ]

( ४ )

नाणेण त्रिणा न हुति चरण गुणा ।

[ उ० अ २८ गा ३० ]

( ५ )

नहा सुई समुत्ता पडिया वि ण विण्णस्सइ ।

तटा जीणे समुत्ते ससरि ण विण्णस्सइ ।

[ उ० अ २१ ग् ११ ]

## ज्ञान

( १ )

प्रथम ज्ञान है, पीछे दया अधान् किया ।

( २ )

सुमुद्यु आत्मा ज्ञान से जीवादिक  
पदार्थों को जानता है ।

( ३ )

मति, श्रुत, अवधि, मन पर्याय और केवल  
इस भाँति ज्ञान पाँच प्रकार का है ।

( ४ )

ज्ञान के बिना जीवन में चारित्र के  
गुणों की प्राप्ति नहीं हो सकती । -

( ५ )

। जैसे सूत्र ( बीजा ) से युक्त हुई गिर धान पर  
भी गुमती नहीं है, उसी प्रकार सूत्र (धृत ज्ञान)

। : स युक्त जीव भी सत्ता में दुःख नहीं पाता ।

( ६ )

अट्ट-जुषाणि सिविस्रज्जा,  
निरट्टाणि उ वज्जा ।

[ उच्यते अ १ गा ८ ]

( ७ )

जावतोऽग्निज्जा पुरिसा,  
सज्जे ते दुक्ख सभवा ।

[ उच्यते अ० १ गा० १ ]

( ८ )

जे मम जाणइ,  
से सव जाणइ ।

[ भाषा० म धु अ ३ उ ४ ]

दसण

( १ )

जीवाऽजीवा य वधो य, पुसण पाथाऽमरो तथा ।  
सवरो निज्जरा मोक्खो, सत्ति ए तहिया नव ।

( २ )

तहियाण तु भायाण, सन्भावे उवएससो ।  
भावेण सदहन्तस्स, सम्मत्त त वियाहिय ।

[ उच्यते अ १८ गा १४ १५ ]

( १ )

अथयुक्त वाक्यों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए,  
निरर्थक वाक्यों को छोड़ देना चाहिए ।

( ७ )

समाज में जितने भी अज्ञान पुरुष हैं,  
व सच दुःख भोगने वाले हैं ।

( ८ )

जो एक (आत्मा) को जान लेता है,  
वह सब कुछ जान सकता है ।

## दर्शन

( १ )

धीर, अजीब, बन्ध, पुण्य, पाप  
आस्रव, संवर, निजरा और मोक्ष  
ये नव सर्व सत्य हैं ।

( २ )

जीवादिक सब पदार्थों के अस्तित्व के  
विषय में सद्गुरु के उपदेश स, अथवा  
स्वयं ही अपने भाव से श्रद्धा करना,  
सम्पत्त्व ( दर्शन ) कहा गया है ।



( ३ )

दसखेण सदहे ।

[ उक्त अ २८ गा २१ ]

( ४ )

सद्दा परम-दुल्लहा ।

[ उक्त अ ३ गा ६ ]

( ५ )

सम्मत्तन्सी न करेइ पात्र ।

[ धावा प्र धु अ ३ उ २ ]

( ६ )

संबुज्झद, किं न बुज्झह ।

सन्नोही सल्लु पेच्च दुल्लहा ।

[ सूत्र धु १ अ २ उ १ गा १ ]

चरित्त

( १ )

चरित्तेण निगिणहाइ ।

[ उक्त अ २८ गा २१ ]

( ३ )

सुसुष्ट आत्मा दशान से जीवादिक  
पदार्थों पर श्रद्धान करता है ।

( ४ )

जीवन में श्रद्धा प्राप्त होना अत्यन्त  
कठिन है । श्रद्धावान् कभी  
पाप नहीं करता ।

( ५ )

समझो, इतना भी क्यों नहीं समझते ?  
परलोक में सम्यग् बोधि का मिलना  
बड़ा कठिन है ।

चारित्र

( १ )

सुसुष्ट साधक चारित्र्य से भोग-वासनाओं का  
निग्रह करता है ।

( २ )

अगुण्यिस्त नतिथ मोन्वो ।

[ उक्त ध २८ गा ३० ]

( ३ )

अहिंस-सच्च च अतेणम च,  
 ततो य वम अपरिगह च ।  
 पडिउजिया पच महव्वयाणि,  
 चरिउम धम्म जिणदेसिय विदू ॥

[ उक्त ध २१ गा १२ ]



( २ )

जो चारित्र्य क गुण से रहित है,  
उस कभी मोष नहीं मिन्न सकता ।

( ३ )

अहिंसा, सत्य, अस्तय, ब्रह्मचर्य और  
अपरिग्रह—इन पाँच महाप्रर्थों का  
स्वीकार करके बुद्धिमान् मनुष्य जिन द्वारा  
उपदेश किए धर्म का आचरण करे ।

( २ )

अनुलिप्त उरिधे मी. लो ।

[ अथ च १८ ल १० ]

( ३ )

पठित-वाच्य च अनेतुग च,

ततो च अम अरिगद च ।

पठितमिष्टा एव महत्त्वपति,

पठितममम मिष्टमिष्ट विदुः ॥

[ अथ च १९ ल ११ ]

— — —

( २ )

जो धारिण्य क गुण स रहित ह,  
उस कभी मास नहीं मिल सकता ।

( ३ )

अहिंसा, सत्य, अस्तय, महाशय और  
अपरिग्रह—इन पाँच महावर्णों का  
स्वीकार करके बुद्धिमान मनुष्य जिन द्वारा  
उपदेश किए धर्म का धारण करे ।



40

[ ५ ]

तव-सुत्त

[ त पः सूत्र ]



( १ )

मग परिमुम्भट ।

[ उल च १८ गा ११ ]

( २ )

मद प्पगणु परिय व उएग ।

[ उल च १९ गा १० ]

( ३ )

तेरेण यादाग जणुपद ।

[ उल च २० गा १० ]

( ४ )

मद पौन्नि-मचिय क्कम,

तरगा निम्भरीउट्ट ।

[ उल च २० गा ६ ]

( ५ )

यतिपारा-गमणु सेव,

दुमकर परिउ त्तो ।

[ उल च २१ गा २० ]

( १ )

सुसुष्ट साधक तप से कम मल रहित  
होकर पूर्णतया शुद्ध हो जाता है ।

( २ )

तपोमूलक चारित्र्य ही सबधष्ट चारित्र्य है ।

( ३ )

तपोबल से सचित कर्म स्थािरत रहत है ।

( ४ )

करोड़ों जन्मों का सचित कर्म भी  
तप से नष्ट किया जा सकता है ।

( ५ )

तपरचरण्य अतिधारा-गमन के समान  
अप्यन्त टुटकर माना गया है ।

( ६ )

ते ततो गतिं तुल्यं कल्पितुं शक्यम् ।  
 वसिष्ठ उवाच ॥ सुखे च दुःखे च चित्तं ॥  
 [ उक्तं च १० भा ७८ ]

( ७ )

अपमत्त-भूते वसिष्ठ, निश्चयवति च चित्तविकल्पो  
 कथं विनया मनीषद, य, इत्येव त्वो दौर्

( ८ )

पापविशेष दिग्गथा यत्र इत्येव त्वेव मत्त, यो ।  
 भूय च विष्णोः तस्यो चित्तविकल्पो उच्यते ।  
 [ उक्तं च १० भा १० ]

( ९ )

तत्र च दत्तं चेत,  
 चित्तं च त्वो तदा ।  
 तत्र मत्त - मत्तुवत्,  
 जीवो मत्तति गुणद ॥

[ उक्तं च १० भा १ ]

( ६ )

तप हा प्रकार का बनलावा हे —  
बाह्य चार अन्वन्तर । बाह्य तप ह  
प्रकार का कहा है इसी प्रकार अन्व  
न्तर तप भी वृ ही प्रकार का है ।

( ७ )

धनशत ऊमोदरी, मित्राचरी, रमपरि  
रवान, काय-बलेश और मलेखना  
य बाह्य तप है ।

( ८ )

प्रायश्चित्त विनय, वैद्यावृत्त, रथाप्याय,  
ध्यान और स्युम्बग-य अन्वन्तर तप ह ।

( ९ )

ज्ञान दर्शन, चारित्र्य और तप—  
इस अनुष्ठान व्याप्यात्मिक भाग का प्राप्त  
होकर सुमुचु जाके माच-रूप सद्गति  
को पाने है ।



[ ६ ]

वय-सुत्त

[ व्रतसूत्र ]

## अहिमा-वय

( १ )

अहिमा व - टाण, ह । तिरुग रमिष ।  
 अहिमा विष्णु, शिवा म-न-र-गु मंडला ॥  
 [ एष च १०१ १० ]

( २ )

पमा भगवद् अहिमा,—

भीकण व मला,  
 पार्मीला व मला,  
 निसिदाग व रमिष,  
 गृहिकामी व अमला,  
 समुदमाग व सोन-न-र-गु,  
 दुष्टियाग व अमति वा,  
 अटविनरुक्त व साध मला,  
 एषा त्रिनिहामिया अहिमा ।

[ एष च १०१ १० ]

( ३ )

सन्ने वया पमाहमिया ।

[ एष च १० ]

## अहिंसा

( १ )

भगवान् महावीर ने अठारह धम स्थानों में सब से पहला स्थान अहिंसा का बतलाया है । सब जीवों के प्रति सयम पूर्वक व्यवहार रखना अहिंसा है । यह सब सुखों को दन वाली है ।

( २ )

यह भगवती अहिंसा मय भीतों का शरण्य है । पक्षियों को जैसे गगन तृपितों को जैसे जल बुधुषितों को जैसे भोजन समुद्र के मध्य में जैसे ( पात्रियों को ) जलजान रोमियों को जैसे शीतल का बल और अन्धी में जैसे सार्थवाह का माय-भगवती अहिंसा का महत्व इससे भा अधिक-बहुत अधिक है ।

( ३ )

सभी प्राणी परम सुख क अभिलाषी हैं ।



( ४ )

मन्त्री जीवित वि ।

[ भाषा १ प्र. प. १ व. १ ]

( ५ )

मन्त्री जीवित वि ह्यन्त्रि-

जीवित १ मन्त्रिणः ।

[ भाषा १ प्र. प. १ व. १ ]

( ६ )

मन्त्री वचन—

विद्वान्

गुह्यं च

दुष्प्रवृत्तिना ।

[ भाषा १ प्र. प. १ व. १ ]

( ७ )

मन्त्री लोकात् पलायमानः कदाचन भवति ।

ते तन्मन्त्रालयं वा, तं कदाचन विद्वन् ।

[ भाषा १ प्र. प. १ व. १ ]

( ८ )

एव तु मन्त्रिणो मन्त्रं, न तं हिमं किरणं ।

अस्मिन्नाममयं तु वचनं विद्वन् ॥

[ भाषा १ प्र. प. १ व. १ ]

( ४ )

सब जीवों को अपना अपना जीवन प्रिय है ।

( ५ )

सभी जीव जीना चाहते हैं,  
मरना कोई नहीं चाहता ।

( ६ )

सब प्राणियों को अपनी आयु प्रिय है,  
सब सुख चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता ।

( ७ )

ससार में चितने भी उस और  
स्थावर प्राणी हैं, उन सब को—  
क्या जान में, क्या अनजान में—  
न खुद मारे और न दूसरा स मरवाये ।

( ८ )

किसी भी प्राणी की हिंसा न करना ही  
पानी होने का सार है । मात्र इतना ही  
अहिंसा के सिद्धांत का पान परोष्ठ है ।  
और यही अहिंसा का विज्ञान है ।

मन्त्रि वर्ग

( १ )

१ ह्यं दन्तिगो वत् ।

[ भाषा १ धृ च १ व १ ]

( १० )

१ इरत्तय कवत् ।

[ भाषा १ धृ च १ व १ ]

मन्त्रु रय

( १ )

त मन्त्र सु मन्त्र ।

[ भाषा १ धृ च १ व १ ]

( २ )

मन्त्रिभि विद् कुत्तय ।

[ भाषा १ धृ च १ व १ ]

( ३ )

मन्त्रिभि विद् कुत्तय—

द्विद्विष्ट मेत्त म मार तद् ।

[ भाषा १ धृ च १ व १ ]

( ६ )

सब प्राणियों की अपनी आत्मा के समान  
समझ कर कभी उनकी हिंसा न करे ।

( १० )

हिंसा भी पाप की हिंसा  
नहीं करनी चाहिए ।

सत्य-व्रत

( १ )

सत्य ही भगवान् है ।

( २ )

सत्य पालन में धीरता रखो—अथान्  
सत्य प्रेमी को धैर्यवान् बनना चाहिए ।

( ३ )

सत्य की छाया में चलने वाला  
मेधावी ( विद्वान् ) पुरुष मृत्यु  
को क्षीण नाता है ।

( ८ )

तमेव सच्च निम्न—

न निम्नदि दोष्य ।

[ वाचा० १ धृ च २ व २ ]

( ९ )

मत्त नोत्तमि मत्तय—

मत्तय मत्तयुद्धयो,

धितय मत्तयययो,

मोवय मत्तयययो

दिष्टय मत्तयययो,

धिनय मत्तयययो,

मुष्टय मत्तयययो ।

[ वर० त्वययय २ ]

( ६ )

मत्तय मत्तय-मेगिष्ठय,

मेति मत्तय कृष्ण ।

[ वर० च १ वा २ ]

( ४ )

अहंता न जो कहा है, वही सत्य है ।  
इस में जरा भी गका नहीं है ।

( ५ )

सत्य ही लोक में सारभूत तत्त्व है,  
वह समुद्र से अधिक गम्भीर है,  
मरु पर्वत से अधिक सुन्दर है,  
चंद्र मण्डल से अधिक सौम्य है,  
सूर्य मण्डल से अधिक प्रदीप्त है,  
शरत्कालीन गगन तल से अधिक  
निम्न है और गन्धमादन परत  
से भी अधिक सुरभित है ।

( ६ )

स्वयं सत्य की शोच करते हुए  
भाषी-मात्र के साथ मैत्री  
भाव रखना चाहिए ।

( ७ )

पुमिना ।

नक्षत्रमर मनमित्र गार्हि ।

[ अथ १ धृ च ३ ४ ५ ]

( ८ )

मुम परिहरे भिन्नम् ।

[ अथ च १ २ ३ ४ ]

( ९ )

मुमराशो य नोऽग्निः,

सा-म-मृद्धि गार्हियो ।

अविमानो य गृहण

तमः साग विकल्पे ।

[ अथ च ३ ४ ५ ६ ]

( १० )

न लोकेऽत्र पुनो सायज्ञ, १ निमृष्ट १ मन्वय,

अथगार्हा पर्या या उभयधन्वरेण क ।

[ अथ १ च १ गा २२ ]

( ७ )

हे पुरप !

'सत्य की समझ

( ८ )

साधक को असत्य बोलना

बोद देना चाहिए ।

( ९ )

मृपावाद ( असत्य ) ससार में

सभी सगुण्यों द्वारा गदित है ।

मृपावादी सभा के अविरवास

का भाजन बन जाता है,

इसलिए मृपावाद को सर्वथा

त्याग देना चाहिए ।

( १० )

अपने म्याथ क लिए, अथवा दूसरों क

खिण, दोनों में से किसी के भी लिए,

पूड़ने पर पाप युक्त, निरधक जब

ममै भेदक बचन नहीं बोलना चाहिए ।



( ११ )

जा य मन्चा श्वत्त ग, सन्चा मौमा य जा मुमा ।

जा य बुद्धेऽि नाइत्त, न त भासिञ्च परय ॥

[ दश० अ ७ गा २ ]

( १२ )

अप्पत्तिय जेण सिया, आमु कुप्पिञ्च वा पगे ।

सयमो त न भासिञ्च, भाम अहियणामिणि ॥

[ दश० अ ८ गा ४८ ]

( १३ )

तद्देव परमा भामा, गुम्भूञ्चोरघादणी ।

सन्चा त्रि सा न वत्तवा, तञ्चो पायम्स थागमो ॥

[ दश० अ ७ गा ११ ]

( १४ )

तद्देव त्ताण कारेत्ति, पडग पटगे ति वा ।

त्राहिय वा त्रि रोमि ति, तेण चोरे ति नो वण ॥

[ दश० अ ७ गा २ ]

( ११ )

जो सत्य होने पर भी अवक्तव्य हो, जो म पामृवा (बुद्ध सत्य बुद्ध असत्य अर्थात् विध्व) हो, जो असत्य हो और जिसे बोलने की तीयहुरों ने आज्ञा न दी हो—ऐसी भाषा बुद्धिमान् साधक कभी न बोले ।

( १२ )

जिस भाषा के बोलने से दूसर को अविश्राम पैदा होता हो, अथवा जिस भाषा का सुनकर दूसरा शीघ्र कुपित हो जाता हो—ऐसी अहित करने वाली भाषा कभी नहीं बोलनी चाहिए ।

( १३ )

जो भाषा बढोर हो, दूसरों को भारी दुःख पहुँचाने वाली हो—वह सत्य ही क्यों न हो—नहीं बोलनी चाहिए । क्योंकि उससे पाप का आश्रय होता है ।

( १४ )

जाने को काना, नपु सक को नपु सक, रोगी को रोगी और धोर को धोर कहना यद्यपि सत्य है, तथापि ऐसा नहीं कहना चाहिए । ( क्योंकि हमसे उन व्यक्तियों को दुःख पहुँचना है । )

( १५ )

नाऽपुट्टो वागरे किंचि, पुट्टो वा नालिय वए ।

[ उक्तं च १ गा १४ ]

( १६ )

अपुच्छिओ न भासेज्जा, भासमाण्णस्स अतरा ।

पिट्ठि मम न स्वाहज्जा, माया-भोस विज्जण ॥

[ इत्थं च ८ गा ४७ ]

( १७ )

बहुय मा य आल्ले ।

[ उक्तं च १ गा १० ]

( १८ )

भासादोम परिहरे ।

[ उक्तं च १ सू २४ ]

अत्तेणग वय

( १ )

अदिनादाण्णो विस्मण ।

[ इत्थं च ४ ]

( १५ )

साधक को चाहिए कि वह न पूछने पर कुछ भी न बाले और पूछने पर कभी असत्य न बोल ।

( १६ )

साधक को चाहिए कि वह दो व्यक्ति परस्पर बात करत हों तो उनके बीच में बिना पूछे न बोले पीठ पाछु किसी को निन्दा न करे तथा बोलने में मायाचार एवं असत्य को कभी न माने ।

( १७ )

चर्पे बकवाद मत करो ।

( १८ )

साधक को दूषित ( सदिग्ध एवं सावध धादि ) भाषा का त्याग कर देना चाहिए ।

## अस्तेय-व्रत

( १ )

सद्गतादान अर्थात् खोती से दूर रहना ।

( २ )

लोभाविले आययद् अदत्त ।

[ उत्त ष ३२ गा २३ ]

( ३ )

चित्तमत्त मचित्त वा, अप्प जद् वा बटु ।  
 न्तमोहणमित्त पि, उग्गह् से अनादया ॥

( ४ )

त अप्पणा न गिरहन्ति, नो पि अन्न गिग्हाण ।  
 अन्न वा गिग्हाण पि, नागुजाणति सत्तया ॥  
 [ दश ष ६ गा १४ १२ ]

( ५ )

दत्त सोहणमाइम्स,  
 अत्तम्म विवज्जण ।  
 अण्णग्गेमण्णिज्जम्स,  
 गिरहणा अत्रि दुक्कर ॥

[ उत्त ष १३ गा २७ ]

( २ )

लोभी मनुष्य ही मद्दत (बिना दिय)  
को मद्दण करता है।

( ३-४ )

सचेतन पदात्त हो या अचेतन, अल्प पदार्थ  
हो या बहुत और वो क्या दौत कुरेदने की  
सीक भी जिस गृहस्थ के अधिकार में हो  
उसकी आज्ञा दिये बिना पूरा सवमी साधक  
न स्वयं मद्दण करते हैं, न दूमरों को मद्दण  
करने के लिए प्ररित करते हैं थार न  
मद्दण करने वालों का अनुमोदन ही करते हैं।

( ५ )

दौत कुरेदने की सीक आदि तुच्छ वस्तुओं भी  
बिना दिये चोरी से न लेना, (बड़ी चीजा की  
चोरी से लेने की तो बात ही क्या ?) निर्दाप  
। एथ एषणीव भोगमभ्यान भी दावा क वहाँ  
से दिया पुष्पा, यह यही हुक्क वाव है।

## वभचेर-त्रय

( १ )

तत्रेमु ३ उत्तम वभचेर ।

[ मूत्र १ ध्रु अ १ उ १३ ]

( २ )

वभचेर—

उत्तम तव-नियम नाण दमण-

चरित्त-सम्पत्त विण्णय-भून ॥

[ धरन १ ध्रु संवा इर ४ ]

( ३ )

विरई श्रवभचेरम्म, काम-मोगरसन्नुणा ।

उत्तम महज्वय वम, धारेयज्व सुदुक्कर ॥

[ उल्ल अ १३ गा २८ ]

( ४ )

श्रवभचरिय घोग, पमय दुरहिट्टिय ।

नायरति मुणी लोण, भैयाययण-वज्जिण्णो ॥

[ इण अ ६ गा १९ ]

( ५ )

मून भेष-महम्मस्स, महादीप समुत्तिय ।

तम्हा भेटुण-ससग्ग, निग्गथा वज्जयति ण ॥

[ इण अ ६ गा ३१ ]

## ब्रह्मचर्य व्रत

( १ )

ब्रह्मचर्य सभी तपों में उत्तम तप है ।

( २ )

तप और निवम, ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य तथा सम्यक्त्व और विनय—इन सबका मूल ब्रह्मचर्य ही है ।

( ३ )

काम भोगों का रस जानने वाले के लिये अब्रह्मचर्य से विरक्त होना और उग्र ब्रह्मचर्य महाव्रत का धारण करना, वदा ही कठिन कार्य है ।

( ४ )

जो मुनि सवम वातक दोषों से दूर रहते हैं, वे लोक में रहते हुए भी दुःश्रेय ममाद् स्वरूप और भयकर अब्रह्मचर्य का कमी सेवन नहीं करते ।

( ५ )

यह अब्रह्मचर्य का मूल है, महादोषों का स्थान है, इसलिए निमन्व मुनि मैथुन सप्तम का सवथा परित्याग करते हैं ।



( ६ )

विभूसा इत्थि ससग्गो, परीथ रसभोयण ।  
नरम्मऽत्तगणेसिस्म, निग तानउड जण ॥

[ दश अ ८ गा ५० ]

( ७ )

विभूम परिउज्जेज्जा, सरीरस्म परिमटण ।  
नभचेर-रथो मिउखू सिंगारत्थ ७ धारण ॥

[ उल अ १६ गा ६ ]

( ८ )

न रूप-नागण-विनास-शम,  
न जपिय इगिय-पहिय वा ।  
इत्थीण चित्ति निपेसत्ता,  
दट्टु वग्गसे समणे तवम्मा ॥

[ उल० अ० १२ गा० ४ ]

( ९ )

अत्मण चेव अपक्खण च,  
अरितण चेव अक्खिण च ।  
इत्थी नणम्माऽऽरियज्झाण जुग्ग,  
हिय सया वग्गण रसाण ॥

[ उल अ १२ गा १६ ]

( ६ )

धरम शोषक मनुष्य के लिये शरीर का श्कार  
दियों का ससर्ग और पौष्टिक स्वादिष्ट भोजन  
सय ताल्लपु विष के समान महान् भयकर है ।

( ७ )

मल्लभयत मिष्ठुड को श्कार के लिये शरीर की  
शोमा और सभावड का कोई भी श्कारी काम  
नहीं करना चाहिये ।

( ८ )

धमय तपस्वी, दियों के रूप, लावण्य, विद्याम,  
हास्य, मधुर वचन, संकेत चेष्टा, हास भास और  
कटाप आदि का मन में तनिक भी विचार न  
लाये, और न हों स्खन का शयन करे ।

( ९ )

दियों को राणपूर्वक देखना, उनकी अभिधापा  
करना उनका चिन्तन करना, उनका कीर्तन  
करना, आदि कार्य मल्लभारी पुरुष को कदापि  
नहीं करने चाहिये । मल्लभय-यत में सदा रत रहने  
की इच्छा रखने याज्ञ पुरुषों के लिये यह निदम  
अन्यन्त हितकर है, और इत्तम ध्यान प्राप्त करने  
में सहायक है ।

( १० )

मोक्ष्याभिकृन्विस्स उ माणवस्स,  
 ससार मीरस्स टियस्स धम्मे ।  
 नेयारिम दुत्तर-मत्थि लोए,  
 जहित्थिओ बाल-मणोहराओ ॥

[ उक्त १ अ ३२ गा १० ]

( ११ )

मए पल्हाय-जणणी काम-राग विउड्ढणी ।  
 वमचेररओ भिररू, थीकह हु विवज्जए ॥

[ उक्त अ १६ गा २ ]

( १२ )

सम च सथन थीहिं, सकट च अभिउवण ।  
 वमचेररओ भिररू, निच्चसो परिवज्जए ॥

[ उक्त अ १६ गा ३ ]

( १३ )

पणीय भउपाए तु, सिण्ण मयविउड्ढण ।  
 वमचेर रओ भिररू, निच्चसो परिवज्जए ॥

[ उक्त अ १६ गा ४ ]

( १० )

गोच के अभिजापी, सत्तार (चारों गतियों में इतस्तव  
रिभ्रमण से) भीड़ और धम में सत्तान समर्थ पुरव  
छिये सी इस सत्तार में नव-यौवना मनोरम स्त्रियों  
त्याग करना जितना कठिन है उतना कठिन दूसरा  
कोई काय नहीं है ।

( ११ )

मल्लचर्य में अनुरक्त भिक्षु को मन में वैषयिक आनन्द  
देना करने वाली तथा काम भोग की आसक्ति  
मदाने वाली स्त्री-कथा को छोड़ देना चाहिए ।

( १२ )

मल्लचय-रत भिक्षु को स्त्रियों के साथ बात चीन  
करना और उनसे बार बार परिचय प्राप्त करना  
सदा के लिए छोड़ देना चाहिए ।

( १३ )

मल्लचय-रत भिक्षु को शीघ्र ही वासना बद्ध,  
पुष्टि कारक भोजन पान का सदा के लिये  
परिधायक कर देना चाहिए ।

( १४ )

रसा पगाम न तित्सेवियञ्पा,  
पाय रसा दित्तिरा नराण ।

[ उक्त च ३२ गा १० ]

( १५ )

सने रुवे य मने य, रसे फासे तहेव य ।  
पचन्दिहे काम गुणे, तिच्चमो परिवञ्जए ॥

[ उक्त च २ गा १ ]

( १६ )

कामागुगिद्विष्ममर खु दुवम्ब,  
सज्यम्म लोगम्म सदेरगम्स ।  
अ फाइय माणसिय च किं चि,  
तासऽन्तग गच्चर्दे धीयरागो ।

[ उक्त च ३२ गा ११ ]

( १७ )

देव-दाणव-भाषत्रा, जक्रम रक्खम्स त्तिरा ।  
पभयारि नमसन्ति, दुवहर जे दग्गति ते ॥

[ उक्त च १६ गा १९ ]

( १४ )

साधक को मधुर, विषत आदि रसों का खवन  
बार बार नहीं करना चाहिये । क्योंकि रस  
इन्द्रियों को उत्तेजित करने वाले होते हैं ।

( १५ )

मद्यचारी भिक्षु को शब्द, रूप, गन्ध रस और  
स्पर्श-इन पाँच प्रकार के काम गुणों को मदा  
के छिप छोड़ देना चाहिये ।

( १६ )

दशताम्रों सहित समस्त मसूर के टुकड़ का मूल  
एक-मात्र काम भोगी की वासना ही है । जो  
साधक इस सम्बन्ध में भीतराग हो जाता है  
वह शारीरिक तथा मानसिक सभी प्रकार के  
दुःखों से छूट जाता है ।

( १७ )

जो मनुष्य इस प्रकार दुष्कर मद्यचर्य का पाखन  
करता है, उसे दण्ड, दानव, गन्धर्व, वरु, राक्षस  
और कितर आदि सभी नमस्कार करते हैं ।

## अपरिग्रह-वय

( १ )

मुच्या परिमादो मुत्तो ।

[ दस अ ६ गा २१ ]

( २ )

ममत्त भाव १ कहिं पि कुज्जा ।

[ दस अ २ गा ८ ]

( ३ )

ममत्तवध च महाभयावट् ।

[ दस अ १६ गा ६८ ]

( ४ )

नेह-पासा भयन्त्रा ।

[ दस अ २३ गा ४३ ]

( ५ )

तदेव हिंस थलिय,

चोग्न थयमसेयण ।

इच्छाकाम च लोभ च,

सन्नयो परियग्गए ।

[ दस अ ३२ गा ३ ]

## अपरिग्रह-व्रत

( १ )

मूर्च्छाभाव ही परिग्रह कहा गया है ।

( २ )

किसी वस्तु पर समस्त भाव  
नहीं रखना चाहिए ।

( ३ )

बाधनों में समता का बाधन  
बटा ही भयानक बाधन है ।

( ४ )

स्नेह का पाशा सब से  
भयानक होता है ।

( ५ )

हिंसा, असत्य बोरी, ऋद्धाचय,  
आपत्ति, वासना और क्षोभ  
सबत पुरुष को इन सब से  
बचना चाहिए ।



## अराड-भोयण वय

( १ )

अभ गयम्भि आइच्चे, पुरत्था य अणुमाण ।

आहार माइय सत्र, मणसा वि न पथए ॥

[ दश अ ८ गा २८ ]

( २ )

सतिमे सुहुमा पाणा, तसा अदुव थानरा ।

जाइ रायो अपामतो, कहमेसणिय चरे ॥

[ दश अ ६ गा २४ ]

( ३ )

से अमण वा, पाण वा,

म्वारम वा साइम वा,

नेर सय राइ भुजिज्जा,

नेपन्नेहि राट भुजाविज्जा,

राट भुज्जते वि अने न समणुजाणिज्जा ॥

[ दश० अ ४ ]

( ४ )

चउक्किहे वि आहारे, राई भोयण-वज्जणा ।

सनिही-सचयो चेर, यज्जेयञ्चो सुदुक्कर ॥

[ उच अ १६ गा ३० ]

## अरात्रि भोजन-व्रत

( १ )

मूय के उदय होने से पहले और सूर्य के अस्त हो जाने के बाद समयी मनुष्य का भोजन पान आदि किसी भी वस्तु की मन से भी इच्छा नहीं करनी चाहिये ?

( २ )

संसार में बहुत से श्रम और स्वावर प्राणी ब" ही मूद्म होत हैं—वे रात्रि में दग्ने नहीं जा सकते । तब रात्रि में भोजन कैसे किया जा सकता है ।

( ३ )

साधक अन्न, पानी, माद्य और स्वाद्य—इन चारों ही प्रकार के आहार का रात्रि में न स्वयं सेवन करे, न दूसरों को सेवन करने की प्रेरणा दे और न सेवन करने वाले का अनुमोदन ही करे ।

( ४ )

अन्न आदि चारों ही प्रकार के आहार का रात्रि में सेवन नहीं करना चाहिये । इतना ही नहीं, दूसरे दिन के लिए भी रात्रि में खाने की सामग्री का संप्रह करना निषिद्ध है । अतः अरात्रि भोजन वास्तव में बड़ा दुष्कर है ।

( ५ )

पाणिग्रह मुमावाया—ऽदत्त-मैत्रुण-परिग्रहा विरञ्चो ।  
 राट-भोयण-विरञ्चो जीवो भवइ अण्णामपो ॥  
 [ दत्त अ ३ गा २ ]



( ५ )

हिंसा मूठ, खोरी, मैथुन, परिग्रह और रात्रि  
 भोजन—ओ जीव इनमे विरत रहता है वह  
 अनाश्रव ( अश्रव रहित ) हो जाता है ।



[ ७ ]

आय-सुत्त

[ आत्म-सूत्र ]

( १ )

अप्या हु म्बलु सयय रक्म्वयत्रो ।

[ उक्त सूत्रिका २ गा १९ ]

( २ )

अप्या नर्दे वेयरग्री, अप्या मे कृडसामली ।

अप्या कामदुला धेणू, अप्या मे नदण वण ॥

( ३ )

अप्या कत्ता विकत्ता य, दुहाण य मुहाण य ।

अप्या मित्त ममित्त य, दुप्पहिय-सुपट्टिओ ॥

[ उक्त अ २० गा ३९ ३७ ]

( ४ )

अप्या चेव दमेयत्रो, अप्या हु म्बलु दुहमो ।

अप्या न्तो सुही होइ, अस्सि लोण परत्थ य ॥

( ५ )

वर मे अप्या न्तो, मज्जेण तरेण य ।

माऽट परेहि दम्भनो, वधखेहि वहेहि य ॥

[ उक्त अ १ गा २२ २९ ]

( १ )

अपनी आत्मा को निरन्तर रक्षा करते रहना चाहिए ।

( २ )

अपनी आत्मा ही नरक की वैतरणी नदी तथा कृष्ण शारदा की वृक्ष है । अपनी आत्मा ही स्वर्ग का कामदुषा धेनु तथा नन्दन वन है ।

( ३ )

आत्मा ही अपन दुःखों और सुखों का कर्ता तथा भोक्ता है । अन्ध मार्ग पर चलने वाला आत्मा अपना मित्र है, और सुरे मार्ग पर चलने वाला आत्मा अपना शत्रु है ।

( ४ )

अपन आपको दमन करना चाहिए । वास्तव में अपने आपको दमन करना बड़ा कठिन है । अपने आपको दमन करने वाला इष्ट लोक में तथा परलोक में सुखी रहता है ।

( ५ )

दूसर लोग मेरा पक्ष धरनादि से दमन करें, इसकी अपेक्षा तो मैं समय और तप के द्वारा अपने आप ही अपना ( आत्मा का ) दमन करूँ, यह अच्छा है ।



( ६ )

अप्पाग् मेव जुग्मादि, रि ते जुग्मेश बग्मश्रो ।  
अप्पाग्मेव अप्पाग्, जग्ता सुहमेहए ॥

[ उ० अ १ गा ३२ ]

( ७ )

नो सहस्र सहस्राण, सगामे दुज्जण जिणे ।  
पग जिणेज्ज अप्पाण एत से परमो जग्गो ॥

[ उ० अ १ गा ३३ ]

( ८ )

पचिन्धियाणि ढोह, माग्ग माय तद्देव लोह च ।  
दुज्जय चेर अप्पाण, सग्गमपे जिण जिय ॥

[ उ० अ १ गा ३४ ]

( ९ )

पुरिसा !

अत्ताण्णेव अभिनि गिग्ग ।

एव दुग्ग्वा पमोक्खसि ॥

[ भा० १ धृ ५ २ उ ३ ]

( ६ )

अपनी आत्मा के साथ ही युद्ध करो, बाहरी मनुष्यों के साथ युद्ध करने से क्या लाभ ? आत्मा के द्वारा आत्मा को जीतना वास्तव में पूर्ण सुखी होता है ।

( ७ )

जो वीर दुःख समाम में लाखों योद्धाओं को जीतता है, यदि वह एक मात्र अपनी आत्मा को जीत ले तो वह उसकी सर्व श्रेष्ठ विजय है ।

( ८ )

पॉच इन्द्रियों, क्रोध, भान, माया, लोभ तथा मय से अधिक दुर्जेय अपनी आत्मा को जीतना चाहिए । एक आत्मा के जीत लेने पर सब कुछ जीत लिया जाता है ।

( ९ )

साधक !

तुम पहले अपनी आत्मा का ही निग्रह करो । ऐसा करने से तुम समस्त दुःखों से पूरी तरह मुक्त हो सकते हो ।

( १० )

न त भरी फठ-धेऊ करेई,  
ज मे करे अण्णगिया टुरप्पा ।  
स नःहिइ मःपु-मुह सु पते,  
पच्छाणुनाणेण दयाविहारी ॥

[ उल्ल स १० गा ३८ ]

( ११ )

गुरिसा !  
नुममेव तुम मिण,  
हि बहिया मिण मिच्छसि ।

[ पावा १ भु स ३ उ ३ ]

( १२ )

नदिथ जीवन्त तासो चि ।

[ उल्ल० स० २ गा० २० ]

( १३ )

नै आया से विद्याया ।  
ज विज्ञाया से आया ॥

[ पावा १ भु स ४ उ २ ]

( १० )

सिर काने वाता शत्रु भी बरवा प्रकृष  
 नहीं करता, जितना कि दुराचार में शत्रु हूँ  
 अपनी आत्मा करती है। दुराचर्य दुराचरों  
 को अपने दुराचारों का लक्ष्य प्रप भी  
 आता, परन्तु अब वह शत्रु के मुख में लुप्त  
 है, अब अपने सब दुराचारों को पद-का-  
 पदकाता है।

( ११ )

साधक !

तू स्वयं ही आता क्यों है। दुरा  
 चापी की ओर य लो आता है !

( १२ )

जीव का कर्म शत्रु भी होगा,  
 वह तो शत्रु का है ।

( १३ )

जो शत्रु है, उसे विजिता है ।  
 जो शत्रु है, उसे शत्रु है ।



[ ८ ]

कम्म-सुत्तं

[ कर्म-सूत्र ]

( १-२ )

नाशुम्माशुण्डिज्ज, नसण्णारण तद्दा ।  
 वेयसिज्ज तद्दा मोद्द, आउक्कम्म च तद्देव य ॥  
 नाम कम्म च गोच च, अतराय तद्देव य ।  
 पवमेयाद् कम्माइ, अद्देव उ समासओ ॥

[ उक्त च ११ गा ११ ]

( ३ )

रागो य दोमो नि य कम्म-धीय,  
 कम्म च मोक्ष्णभव वयन्ति ।  
 कम्म च जाई-मरणाप्स मूल,  
 दुक्ख च जाई मरण वयन्ति ।

[ उक्त च ११ गा १ ]

( ४ )

तेणे जहा सधि-मुद्दे गहीण,  
 सकम्मुण्ण। किच्चइ पावकारी ।  
 पूव पया पेच्च इह च लोप,  
 कडाण कम्माण न मुक्ख अत्थि ॥

[ उक्त० च ४ गा १ ]

( १२ )

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय  
आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय—इस प्रकार  
सद्यप में ये आठ कर्म बतलाये हैं ।

( ३ )

राग और द्वेष—दोनों कर्मों के बीज ( जनक )  
हैं—अतः कर्मों का उत्पादक मोह ही माना  
गया है । कर्म सिद्धांत के अनुभवी लोग  
कहते हैं कि ससार में जन्म मरण का मूल  
कारण कर्म ही है, और जन्म मरण—  
यही एक मात्र दुःख है ।

( ४ )

जैसे घोर लेंच के द्वार पर पकड़ा जाकर अपने  
ही दुष्कर्मों के कारण चीरा जाता है, वैसे ही  
पाप करने वाला प्राणी भी इस लोक में  
परलोक में—दोनों ही जगह—मयङ्कर हुआ  
जाता है । क्योंकि कृत कर्मों को भोग कि  
कभी पुष्कारा नहीं मिल सकता ।



( ५ )

कचारमेव श्रगुनाड कम्म ।

[ उक्त च ११ गा २१ ]

( ६ )

कम्म-सगेदि सम्भूटा, दुविन्नाया बहु-वेयणा ।

अमाग्गुमाग्गु जोणीसु, विण्हिहम्मन्ति पाणियो ॥

[ उक्त च १ गा ९ ]

( ७ )

कम्मग्गा उवाही जायड ।

[ पाथा १ धु च १ ठ १ ]

( २ )

कम कर्ता का अलुगमन करता है ।

( ६ )

ओ माखी काम वासनाओं से घिर रहते हैं, वे भयङ्कर दुःख तथा वेदना भोगते हुए विरकाळ तक मनुष्यता योनियों में भटकन रहते हैं ।

( ७ )

सर्व प्रकार की उपाधि का  
जन्म कम से ही होता है ।





[ ६ ]

कसाय-सुत्त

[ क सा य - सू त्र ]

( १ )

थर्मा य इह के युता ।

[ उत्तम अ २१ गा २१ ]

( २ )

कमाया अभिखो युता ।

[ उत्तम अ २१ गा २१ ]

( ३ )

मोहा य माखो य अणिगहीया,  
माया य लोभो य परद्धमाणा ।  
चत्तारि एए कसिणा कमाया,  
मिचन्ति मूलाद् पुणवभवस्स ॥

[ दश अ ८ गा ४० ]

( ४ )

कोह च माण च माय च, लोभ च पावद्धदण ।  
वमे चत्तारि दोसे उ, इच्छन्तो हिय-मप्पणो ॥

[ दश अ ८ गा ३० ]

( ५ )

कोहो पादि पणासेइ ।

[ दश अ ८ गा ३८ ]

( १ )

जन्म संसार म ( वास्तविक )  
‘अग्नि कौन सी मानी गई ह ?

( २ )

कषायों को ही (वस्तुतः) ‘आग कहा गया है ।

( ३ )

अनिगृहीत क्रोध और मान तथा  
प्रथक्मान माया और लोभ—य चारों  
ही कषाय पुनर्जन्म रूपी संसार-वृत्त की  
जड़ों को माचत हैं । अर्थात् कषायों से  
जन्ममरण का वृद्धि होता है ।

( ४ )

जो मनुष्य अपना हित चाहता है, वह  
पाप को बग़ारे वाले क्रोध, मान माया  
और लोभ इन चार दापा की मदद के  
लिण छोड़ दे ।

( ५ )

‘क्रोध शक्ति’ का नाश करता है ।

( ६ )

अहे वयन्ति कोद्वेण ।

[ उक्त च ३ गा २४ ]

( ७ )

मा य च्चालिय फ़ासी ।

[ उक्त च १ गा १ ]

( ८ )

रन्निम्बुन कोट ।

[ उक्त च ४ गा ११ ]

( ९ )

उरममेण ह्यो कोड ।

[ उक्त च ८ गा ३९ ]

( १० )

कोट्टिजण्णु जीवे म्यति जण्णुयइ ।

[ उक्त च १९ सूत्र ९७ ]

( ११ )

माणो विम्वय-नासणो ।

[ उक्त च ८ गा ३८ ]

( १२ )

माणेण अहमा गई ।

[ उक्त च ३ गा २४ ]

( ९ )

क्रोध से मनुष्य नीचे गिरता है ।

( ७ )

क्रोध करना—यह चाण्डाल कर्म है  
साधक कभी चाण्डाल कर्म न करे ।

( ८ )

आत्म-शोधक साधक का कर्तव्य है  
कि वह क्रोध को दबाए ।

( ९ )

शान्ति से क्रोध को मारे ।

( १० )

क्रोध पर विजय पा करके मुमुक्षु आत्मा  
समाधर्म को प्राप्त कर लेता है ।

( ११ )

मान विनय का नाश करता है ।

( १२ )

यह आत्म अभिमान से अधमगति को पहुँचता है ।



( १३ )

विगणजन माग ।

[ उल अ ४ गा १२ ]

( १४ )

माग मद्रवया विणे ।

[ दश-अ ८ गा ३१ ]

( १५ )

माग विजणगु नीचे मद्रव जणुयद

[ उल अ २१ मूय १८ ]

( १६ )

मया मितगि नासेद ।

[ दश अ ८ गा ३८ ]

( १७ )

माया गद पन्निग्राणो ।

[ उल अ १ गा २४ ]

( १८ )

माय ७ सेवे ।

[ उल अ ४ गा १२ ]

( १९ )

माय-मज्जवभावेण ।

[ दश अ १८ गा ३६ ]

( १३ )

साधक ब्रह्मकार को दूर कर ।

( १४ )

साधक ममता से अभिमान को पीने ।

( १५ )

ज्ञान पर विश्रय पा लेने के बाद मुमुक्षु आत्मा  
मृत्यु का कोमलता को प्राप्त कर लेता है ।

( १६ )

माया मित्रता का नाश करती है ।

( १७ )

माया से सद्गति का नाश होता है ।

( १८ )

साधक का कर्तव्य है कि वह  
माया का सेवन न कर ।

( १९ )

साधक सख्खता से माया [ नाश करे ]

( २० )

मया रिक्तपण जीवे अउवव जणुयन् ।

[ उक्त अ २३ सूत्र ११ ]

( २१ )

नाभो सत्र रिणामणी ।

[ दश० अ० ८ गा० १८ ]

( २२ )

लोहामो दुदशो भय ।

[ उक्त अ ३ गा २४ ]

( २३ )

जहा नाहो तहा लोहो,

लाहा लोहो परइन्द ।

[ उक्त अ ८ गा १० ]

( २४ )

इच्छा हु आगासवना अणुतिया ।

[ उक्त अ ६ गा ४८ ]

( २५ )

तयन् हया जम्स ७ होइ लोहो ।

लोहो हथो जम्स ७ किचणाइ ॥

[ उक्त अ ३२ गा ८ ]

( २० )

माया को जीत कर माघक ज्ञानव  
धर्म को पा लेता है ।

( २१ )

लोभ सभी सद्गुणों का नाश कर देता ह ।

( २२ )

लोभ से हम लोक तथा परलोक  
में महान् भय है ।

( २३ )

ज्यों ज्यों लोभ होता जाता है,  
त्यों त्यों लोभ भी बढ़ता जाता ह ।

( २४ )

मनुष्य की इच्छाओं चाकार के समान  
अनन्त है । उनकी सीमा नहीं है ।

( २५ )

जिसे लोभ नहीं है, उसकी तृप्या  
बढ़ी गई । जिसके पास लोभ  
करने जैसा बुद्ध भी नहीं है,  
उसका लोभ बड़ा गया ।

( २६ )

पयद्वज्ज लोह ।

[ उक्त च ७ मा १० ]

( २७ )

लोभ सतोमद्यो जिरो ।

[ उक्त च ८ मा ११ ]

( २८ )

लोभ विवण्णु जीरे मतोम नगयद्व ।

[ उक्त च ११ सूत्र १० ]

( २९ )

न मोह-ज्जी

से माणु-दमा,

न माणु-ज्जी

से माया-ज्जी,

ने माया-दसी-

स लोभ-ज्जी ।

[ आधा १ ध्रु च १ उ ४ ]

( ३० )

कमाय पच्चन्नाखेणु जीये वीयरगभार जणुयद्व

[ उक्त च २१ सूत्र १२ ]

( १९ )

साधक को चाहिए कि वह लोभ को छोड़ दे ।

( २० )

साधक सातोष से लोभ को कानू में धाव ।

( २८ )

लोभ पर विजयी होने के बाद सुमुष्ट  
जीव सातोष धम को प्राप्त कर लेता है ।

( २३ )

जो क्रोध करता है, वह मान भी करता है,  
जो मान करता है, वह माया का भी सेवन  
करता है, और जो माया का सेवन करता है,  
वह लोभ भी करता है ।

( ३० )

कषाय के त्याग करने से वह आत्मा  
धीतराग भाव को प्राप्त करता है ।





[ १० ]

काम-विजय-सुत्तं

[ कामविजयसूत्र ]



( १ )

ने गुणों से आरंभे,  
ने आरंभे से गुणों ।

[ भाषा १ धृ अ १ उ २ ]

( २ )

जे गुणों से मूलद्रव्ये,  
जे मूलद्रव्ये से गुणों—  
इति मे गुणद्वी महया परिव्यायेण,  
पुण्यो पुण्यो बरी पमत्ते ।

[ भाषा १ धृ अ २ उ १ ]

( ३ )

सत्त्व कामा रिम कामा, कामा आसीरिमोवमा ।  
नामे य पदमाणा, अकामा जति नोभद ॥

[ उक्त अ १ गा २१ ]

( ४ )

सत्र विनविय गीय, सत्र नद विदविय ।  
सत्रे आभरणा मारा, सत्रे कामा दुद्वारहा ॥

[ उक्त अ ११ गा १६ ]

( १ )

हृदियों के विषय को ही 'संसार' कहते हैं और जो संसार है, वह हृदियों का विषय ही तो है ।

( २ )

।  
जो विषय भोग है, वे ही संसार के मूल कारण हैं, जो संसार के मूल कारण हैं, वे विषय भोग ही तो हैं । जो विषय क्षीण होता है वह विषयाधीन तथा प्रमादी होने के कारण बार-बार दुःख भोगता रहता है ।

( ३ )

काम भोग शून्य रूप है, काम भोग विपर्यय है, काम भोग विपर्यय सर्व के समान है । काम भोगों की लालसा रखने वाले प्राणी उन्हीं प्राणियों के बिना ही अष्टादश में एक दिन दुःखिता की प्राप्ति हो जाते हैं ।

( ४ )

गीत सब विलास रूप है, नाट्य सब विह्वलना रूप है । आभरण सब भार रूप है । अधिक कथा, संसार के जो भी काम भोग हैं वे सब दुःख देने वाले हैं ।

( ५ )

मृण्मेत सोम्वा बहुकाल दुम्वा,  
 पगापुदुम्वा, अणिगाम सोम्वा ।  
 समार मोम्बस्म निमुम्बभूया,  
 स्वाणी अण्चाण उ कामभोगा ॥

[ उक्त अ १४ गा १३ ]

( ६ )

दुप्परिच्चया इमे कामा ।

[ उक्त अ ८ गा ९ ]

( ७ )

भोगा इमे सगकरा भवति ।

[ उक्त अ १३ मा २० ]

( ८ )

कामाणुगिद्धि-प्पभव सु दुम्ब ।

[ उक्त अ १२ गा १२ ]

( ९ )

जहा किपागफलाण, परिणामो न सुन्दरो ।

तहा भुचाण भोगाण, परिणामो न सुन्दरो ॥

[ उक्त अ १६ गा १० ]

( १ )

काम भोग चण मात्र मुख देने वाले हैं  
 और चिरकाल तक दुःख देने वाले हैं ।  
 उनमें मुख बहुत थोड़ा है । अत्यधिक  
 दुःख ही दुःख है । मोघ-मुख के वे  
 भयङ्कर शत्रु हैं, अनर्थों की खान हैं ।

( २ )

सचमुच काम भोगों का  
 छोड़ना बड़ा कठीन है ।

( ३ )

ये काम भोग ही आत्मिक  
 के बढ़ाने वाले होते हैं ।

( ४ )

काम भोगों में आत्मिक रखने  
 से ही दुःख पैदा होता है ।

( ५ )

जैसे किपाऊ फलों को भोगने का परिणाम  
 अच्छा नहीं होता उसी प्रकार भोगे हुए  
 भोगों का परिणाम भी अच्छा नहीं होता ।

( १० )

पामर,

जगते स्वप्नसु गिद्धे परिगुञ्जमाणे,

पथ फासे पुण्ये पुण्ये ।

[ छांदा १ ध्रु च २ उ १ ]

( ११ )

दृक्लेपो होइ भोगेसु, अमोगी तीवलिष्यई ।

भोगी भयर ममारे, अभोगी विषयसुन्दई ।

[ उक्त च २२ मूत्र ३१ ]

( १२ )

तम्हा सग नि पासद,

गथेष्टि गणिया नरा विसजा काय कक्ता

तम्हा लुगथो नो वित्तसेज्जा

[ छांदा १ ध्रु च १ उ ]

( १३ )

कामे कमाही कमिय सु दुस्त्र ।

( १० )

देखो,  
जो क्षोग रूप चाँि इन्द्रिय विषयों  
में आसक्त हैं वे बार-बार नाकादि  
दु खों को भोगते रहते हैं ।

( ११ )

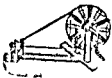
जो मनुष्य भोगी है—भोगासक्त है, वही कर्म  
मज से लिप्त होता है, अभोगी लिप्त नहीं होता ।  
भोगी संसार में परिभ्रमण करता रहता है और  
अभोगी संसार बंधन से मुक्त हो जाता है ।

( १२ )

साधक !  
नकार के विषयों की आसक्ति छोड़ दे । मन  
सम्पत्ति में मोहित प्राणी अनेक कामनाओं से  
धिर कर दु खी होते रहते हैं, इसलिए साधक  
को समय से नहीं दिगना चाहिए ।

( १३ )

कामनाओं को त्याग दो, समझ लो कि तुम्हारे  
सब दु खों का शत्रु था गया है ।



[ ११ ]

अप्पमाय-सुत्तं

[ अ प्र मा द-सूत्र ]



( १ )

ममय गोयम । मा पमायण ।

[ उक्त अ १ गा १ ]

( २ )

उद्विण नो पमायण ।

[ आशा १ धु अ २ उ २ ]

( ३ )

मर्या पमत्तम्भ भय ।

[ आशा- १ ध अ २ उ १ ]

( ४ )

असम्भय जीविय मा पमायण ।

[ उक्त अ ५ गा १ ]

( ५ )

पित्तण ताण न लमे पमत्ते ।

[ उक्त अ ५ गा २ ]

( ६ )

घोरा मुहुत्ता अवन सरीर,

भारह पवस्वीव चरेऽपमत्ते ।

[ उक्त अ ५ गा २ ]

( १ )

मौजम ।

पल मात्र प्रमाण मठ कर ।

( २ )

उठ, प्रमाद मोद दे ।

( ३ )

प्रमादी मनुष्य को पापों का भय  
भय बना रहता है ।

( ४ )

जीवन समरूप है, अपना एक का  
जीवन दृष्ट आन पर फिर नहीं उदता,  
अतः दृष्ट धर भी प्रमाद न करो ।

( ५ )

प्रमत्त मनुष्य धन के द्वारा  
अधमी रहा नहीं कर सकता ।

( ६ )

‘अज्ञान विद्वेद है और ज्ञान विद्वेद’  
कह आनन्द आनन्द कृष्ण की लक्ष्मी  
हीनता अज्ञानता मात्र से विद्यमान करिण ।

( ७ )

घरि मुहुच-भरि तो पमायण,

बयो अच्चेह—

जोवण च,

जीविय ॥

[ आषा १ भु घ १ उ १ ]

( • )

धीर पुरुष को चण मात्र भी प्रमाद नहीं करना  
 चाहिए । उसका समूह्य आयु, यौवन  
 और जीवन चण चण में बीत रहा है ।





[ १२ ]

समण-सुत्त

[ श्रमणसूत्र ]

( १ )

मो समणो जइ सुमणो,  
 भावेण चइ गु ढोइ पायमाणो ।  
 सयणे य जणे य समो,  
 समो य माणावमाणेषु ॥

( २ )

जइ मम न पिय दुक्ख,  
 जाणिय एमेव सव-जीवाण ।  
 न दण्ड न दण्णावेइ य,  
 समण-मइ तेण सो ममणो ॥

( ३ )

एणिय य से कोइ वेसो,  
 पिओ य सज्जेसु चेव जीवेषु ।  
 एएण ढोइ समणो,  
 एमो अन्नो वि पज्जाओ ॥ [अनुयोग द्वार सूत्र]

( ४ )

गुणेहिं साह अगुणेहिं ऽसाह,  
 गिरहादि साह गुण मुञ्च ऽसाह ।  
 वियाविया अप्पगमप्पएण,  
 जो राग-दोसेहिं समो स पुज्जो ॥

( १ )

जिसका हृदय सदा प्रफुल्लित है, जो कभी भी पाप  
चिन्ता नहीं करता, जो स्वजन और परजन तथा  
मान और अपमान बुद्धि का समुल्लस रक्षता है—  
वह भ्रमण है।

( २ )

जिस प्रकार मुझे दु ख अच्छा नहीं लगता वसा  
प्रकार सभी जीवों को दु ख अच्छा नहीं लगता।  
यह समझ कर जो न स्वयं हिंसा करता है,  
और न कराता है, अर्थात् सभी प्राणियों पर  
समबुद्धि रखता है, वही भ्रमण है।

( ३ )

'भ्रमण' की एक व्याख्या यह भी है कि  
"जा किसी से द्वेष नहीं करता, जिस पर क ह  
समान भाव से प्रिय है—वह भ्रमण है।"

( ४ )

गुणों से सातु होता है और बुराई से अपाय,  
अतः ह मुमुक्षु ! सगुणों की राह पर और  
दुर्गुणों को छोड़ । जो साधक मनः प्रत्याहार  
अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरा का पहचान  
कर राग और द्वेष दोनों में समान रखता है,  
वह भ्रमण है।



( ५ )

तेनि गुरुण गुण-मायराण,  
 सोच्चाण भेदारी सुभसियाइ ।  
 चरे मुणी पचरण तिगुणे,  
 चउक्कमायारगण स पुग्गो ॥

[ दश अ ३ व १ गा ११ ]

( ६ )

न'सु-दसण-सम्पर, सज्जमे य तवे रय ।  
 णव गुण-समाउच, सज्जय साहुमाल्ले ।

[ दश अ ७ गा ]

( ७ )

जे य कते पिण भोण, लद्धे वि पिट्ठी कु  
 साहीणे चयइ भोण से तु चाइ चि बुच्च

( ८ )

वत्थ गध-मलकार, इत्थियो समणायि  
 अच्चददा जे न भुत्ति, न से चा चि बुच्च

[ दश अ १ गा ]

( १ )

जो बुद्धिमान् मुनि सद्गुण सिद्ध गुरुजनों के सुभाषितों को सुनकर तदनुसार पाँच महाप्रतों में रूठ होता है, तान गुप्तियों को धारण करता है, और चार कपायों से दूर रहता है, वही पूज्य है ।

( २ )

सच्चा साधु उसी को कहना चाहिए जो ज्ञान और दर्शन से सम्पन्न हो, संयम और तपश्चरण में खीन हो और सदा सद्गुणों को धारण करने वाला हो ।'

( ३ )

जो मनुष्य सुन्दर और प्रिय भोगों का पाकर भी पीठ फेर लेता है, सब प्रकार से स्वाधीन भोगों का परित्याग कर देता है, वही सच्चा स्वागी कहलाता है ।

( ४ )

जो मनुष्य किसी परतंत्रता के कारण बस्त्र, गंध, अलङ्कार स्त्री और शयन आदि का उपभोग नहीं कर पाता, वह सच्चा स्वागी नहीं कहलाता है ।

( ६ )

कह तु युज्जा सामरण,  
 जो कामे १ निगारण ।  
 पण पण तिसीपतौ,  
 सकप्पम्स वस गथो ॥

[ दण अ २ गा १ ]

( १० )

जे केइ पञ्चइए,  
 निहासीले पगामसो ।  
 भीन्चा पिच्चा सुइ सुवइ,  
 पावसमणि ति लुच्चइ ॥

[ उत० अ १ गा १ ]

( ६ )

जो वासनाओं को नहीं रोक सकता, वह  
आमरण-मदम की पाजना कैसे कर सकता  
है ? वह जो वासना के बशीमूत होकर  
पद पद पर विषाद को पाता रहता है ।

( १० )

जो मिथु प्रमद्व्या लेकर भी अत्यन्त  
निद्राशील हो जाता है, खा पीकर मने से  
सो जाया करता है, वह 'पाप भ्रमण'  
कहा जाता है ।





[ १३ ]

असरण-सुत्त

[ अ श र ण-सू त्र ]

( १ )

जन्म दुःख जग दुःख, रोगाणि मरणाणि य,  
अहो दुःखो ह्यु ससारो, जन्तु कीर्तित जन्तुणो ॥

[ उक्त अ १६ गा १६ ]

( २ )

हम मरीर अग्निन्च, असुह असुइसभन ।  
असासयावासमिण, दुकर-कैमाणमायण ॥

[ उक्त अ १६ गा १६ ]

( ३ )

वित्त पसरो य नाइथो, त बाले सरण ति मनई ।  
एण मम तेसु वि अह, नो ताण सरण ति विज्जई ॥

[ उक्त अ १ अ २ उ ३ गा १६ ]

( ४ )

न चित्ता तायए भासा,  
दुयो विज्जाणुसासण ।  
विसन्ना पाव न्मेहि,  
बान्ना पडियमाणिणो ॥

[ उक्त अ ६ मा ११ ]

( १ )

जन्म का दुःख है, जरा का दुःख है, रोग और मरण का भी दुःख है। अहो! सारा ससार दुःखमय ही है। यहाँ प्रत्येक प्राणी जब देखी तब क्लेश ही पाता रहता है।

( २ )

यह शरीर अनित्य है अशुचि है, अशुचि से उत्पन्न दुःखा है, दुःख और क्लेशों का घाम है। जीवात्मा का इसमें कुछ हाथों के लिए निवास है, यालिए एक दिन तो अचानक छोड़ कर चले ही जाना है।

( ३ )

धन पशु और जानि बाजों को मूर्ख मनुष्य अपना शरण मानता है और समझता है कि ये मरे हैं और 'मैं ठमका हूँ'। परन्तु इनमें से कोई भी आपत्तिकाश्रम में प्राण तथा शरण दान बाधा नहीं।

( ४ )

विचित्र विचित्र भाषा आपत्तिकाश्रम में प्राण करने बाधी नहीं, इसी प्रकार मन्त्रमन्त्र भाषा का अनुशासन भी प्राण करने बाधा कैस हो? अह माया और मंत्रिक विद्या से प्राण जाने की प्राण बाधे परिवर्तनमय मूल जन पद कमों में मग्न हो रह है।



( ५ )

दाराणि सुया चैव, मित्रा य तद् न धवा ।  
जीवन्तमणुजीवन्ति, मय नाणुन्यति य ॥

[ उक्तं अ० १८ गा० १४ ]

( ६ )

जहेह सीहो च मिय गहाय,  
मच्चू नर नेह हु अन्तमाले ।  
न तम्स माया य पिया य भाया,  
कालम्भि तम्ससहरा भवति ॥

[ उक्त० अ० १३ गा० २२ ]

( ७ )

आरमन दुवम्बमिण ति श्चचा,  
माई पमाई पुण रेइ गढम ।  
उवेहमाणे सद-ह्वेसु उज्जू  
मारामिसकी मरणा पमुच्चह ॥

[ आषा धु १ अ १ उ १ ]

( ५ )

स्त्री, पुत्र, मित्र और वधुवन सब कोई जीते भी के साथी हैं, मरने पर कोई भी पीड़े नहीं खाता ।

( १ )

जिब प्रकार सिंह, मृग को पकड़ कर ले जाता है, उसी प्रकार अन्त समय में मृत्यु भी मनुष्य को दबीच लेती है । उस समय माता, पिता भाइ आदि कोई भी उसके दुःख में भागीदार नहीं होने—परलोक में उसके साथ नहीं जाते ।

( ७ )

संसार में दुःख हिंसा से उत्पन्न होता है, मायावी तथा प्रमादी को बार बार जन्म-मरण करना पड़ता है । वह जन्म-मरण के चक्कर से नहीं छूटता । यह जानकर कषाय रहित सरल स्वभाव वाला विवेकी पुरुष मृत्यु से डर कर शब्द, रूप आदि इन्द्रिय-विषयों में उपेक्षा रखता है और धीरे धीरे वह मृत्यु से छूट जाता है ।



[ १४ ]

खामणा-सुत्तं

[ क्ष मा प ना - सू त्र ]

( १ )

स्वामेमि सत्र-जीवे,  
 सवे जीवा स्वमतु मे ।  
 मिची मे सत्र-भूषणु,  
 वेर मज्झ न केणइ ॥

[ प्रतिक्रमण सूत्र ]

( २ )

त्वमियञ्च, स्वामियञ्च,  
 उवसमियञ्च, उवसामियञ्च,  
 समुद्र सपुच्छणा-बहुलेण होयञ्च ।  
 जो उवसमइ तस्स अत्थि आराहणा ।  
 जो न उवसमइ, तस्स नत्थि आराहणा ।  
 तम्हा अप्पणा चेव उवसमियव ।  
 से किमाहु, भते ?

“उवसमसार खु सामणण ।”

[ रूप-सूत्र ]



( १ )

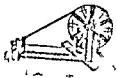
अपनी ओर से मैं सब जीवों को समा करता हूँ  
और वे सब जीव भी मुझ समा करें। मेरी सब  
आवों के साथ पूण मैत्री है किसी के साथ  
वैर विरोध नहीं है।

( २ )

दूसरे की भूलों को अपनी ओर से समा कर दे,  
अपनी भूलों के लिए दूसरे से समा मांग ले।  
आपसी द्वेष को दूर करके स्वयं शान्त हो जा,  
और दूसरे से शान्त होने की प्रार्थना कर। स्वयं  
दूसरे के पास जाकर उसके कुशल समाचार पूछ।  
जो मगड़े या मगड़े के कार्यों को मित्रता है,  
वह भगवान् की आज्ञा का आराधक है। जो  
उन्हें नहीं मिटाता वह आराधक नहीं है। इस  
लिए अपनी ओर से ही मगड़ा शान्त करने का  
प्रयत्न करना चाहिए।

भगवान् ! ऐसा क्यों ?

“उपशम—शान्ति ही अमण्य धर्म का तार है।”



[ १५ ]

विविह-सुत्तं

[ वि वि ध सू त्र ]



( १ )

चत्वारि परमगणि, दुल्लहाणीह जन्तुणो ।  
माणुसत्त सुदं मद्धा, सजमग्मि य वीरिय ॥

( २ )

कम्माण तु पहाणाण आणुपुग्गी कयाइ उ ।  
जीरा सोहिमणुपत्ता, आययन्ति मणुम्सय ॥

( ३ )

माणुम्स विग्गट लद्धु, सुद धम्मस्स दुल्लहा ।  
ज सोन्चा पडिवज्जत्ति, तत्र म्वन्तिमत्तिसय ॥

( ४ )

आइच्च सण लद्धु, सद्धा परम दुल्लहा ।  
सोन्चा नेआउय ममा, बह्वे परिभस्सई ॥

( ५ )

मुड च लद्धु सद्ध च, वीरिय पुण दुल्लहा ।  
बह्वे रोयमाणा वि नो य एण पडिवज्जण ॥

( १ )

मसार में जीवों को इन चार अष्ट अंगों ( जीवन विकास के साधनों ) का प्राप्त होना बड़ा दुर्लभ है — मनुष्यत्व, धर्म अथवा, अज्ञान और स्वयं में पुण्यार्थ ।

( २ )

मसार में परिश्रमण करते करते जब कभी बहुत काल में पाप कर्मों का वग छोड़ हो जाता है और उसके फल स्वरूप अन्तरात्मा अन्तरात्मा शुद्धि को प्राप्त हो जाता है तब कहीं मनुष्य जन्म मिलता है ।

( ३ )

मनुष्य जन्म को प्राप्ति हो जाने पर भी धर्म के अथवा का अवसर मिलना बड़ा कठिन होता है, जिसे सुनकर मनुष्य तप, दान और अहिंसा को स्वीकार करता है ।

( ४ )

कभी कभी धर्म अथवा का अवसर मिल जाता है, परन्तु उस पर अज्ञान का अज्ञान तो अत्यन्त ही दुर्लभ होता है । कारण कि बहुत से लोग न्याय मार्ग को—सत्य सिद्धांत को सुनकर भी उससे दूर ही रह सकते हैं—उन पर विश्वास नहीं करते ।

( ५ )

धर्म का अथवा और उस पर अज्ञान—दोनों प्राप्त कर लेने पर भी उनके अनुसार पुण्यार्थ करना तो और भी कठिन है । क्योंकि बहुत से लोग ऐसे हैं, जो धर्म पर दृढ़ विश्वास रखते हुए भी उसे आचरण में नहीं लाते ।

( ६ )

माणुसत्तमि आयाओ, जो धम्म सोच्च सद्दे ।  
तवस्सी वीरिय लद्धु, सनुडे निद्धुणे रय ॥

[ दश ध १ गा १०८ १० ११ ]

x x x x x

( ७ )

पद्म नाण तओ दया, ण चिट्ठ सन्न-सजओ ।  
अजाणी िं काही ः किं वा नाही य सेय-यावग ॥

[ दश ध ४ गा १० ]

( ८ )

"बघ प्पमोस्खो तुग्गत्तयमेव ।"

[ द्वाधा सु १ अ २ उ १ ]

( ९ )

जय चरे जय चिट्ठ, जय-भासे जय सए ।  
जय भुत्तो भासन्तो पाव-क्कम्म न बघइ ॥

( १० )

सन्न भूय प्पभूयस्स, सम्म भूयाइ पासओ ।  
पिहियासउस्स दत्तस्स, पावक्कम्म न बघइ ॥

[ दश ध ४ गा ८१ ]

( ६ )

रन्तु जो तपस्वी मनुष्यत्व को पाकर धर्म का अध्ययन कर  
स पर ध्यान छाटा है और तदनुसार पुरपाथ कर आश्रय  
हित हो जाता है, वह अन्तरात्मा पर से कर्म-रज को  
मूढक देता है ।

× × × ×

( ७ )

धर्म ज्ञान है, पीछे दया । इसी क्रम पर समग्र स्वामी वर्गों  
की सधर्म यात्रा के लिए टहरा हुआ है । भला, अज्ञानी  
क्या करेगा ? श्रेयस् और अधयम् को या पुण्य एवं  
पाप की वह कैसे जान सकेगा ?

( ८ )

बन्धन और मुक्ति तुम्हारी आत्मा में ही है ।

( ९ )

ह से पहले, विवेक से खड़ा हो, विवेक से बैठे, विवेक से  
विवेक से भोजन करे और विवेक से ही बोले तो पाप  
कर्म नहीं पधता ।

( १० )

सब जीवों को अपने ही समान समझता है, अपने पराये  
के समान दृष्टि से देखता है, जिसने सब आसुओं का  
कारण किया है, जो सबको ही द्रव्यों का दमन कर चुका  
है, उसे पाप-कर्म का बंध नहीं होता ।

( ११ )

द्वन्द्व निरोद्धेण उभेद् मोक्ष्य,  
 आसे नद्वा सिन्धुय-व्यमधारी ।  
 पु राद वामाद् चरेऽपमत्तो,  
 तन्हा मुणी स्विप्पमुवेद् मोक्षत ॥

[ इत्त० अ ४ गा ८ ]

( १२ )

नाणम्म सन्वस्स पगासणाण,  
 अनाण-मोहस्स विग्गजणाण ।  
 रागस्स नेसस्स य सत्तएण,  
 एगंत-मोक्ख्य समुवेद् मोक्ख ॥

( १३ )

तस्सेस मग्गो गुरु-विद्ध-सेवा,  
 विवग्गजणा चात-नणम्मस दूरा ।  
 सग्गन्नाय एगत निसेवणा य,  
 सुनत्थ चिन्तणया धिर्द्द य ॥

x

x

x

x

x

( १४ )

लामो त्ति न मग्गजेज्जा,  
 अलामो त्ति न सोयप् ।

[ आषा० धु १ अ २ उ ५ ]

( ११ )

जिस प्रकार सिद्धि (सधा हुआ) तथा कवचधारी घोटा युद्ध में विजय प्राप्त करता है, उसी प्रकार विवेकी मुमुक्षु भी जीवन सप्राम में विजयी होकर मोक्ष प्राप्त करता है। जो मुनि दीयकाल तक अप्रमत्त रूप से समय धर्म का आचरण करता है, वह शीघ्राविशीघ्र मोक्ष पद पाता है।

( १२ )

एक प्रकार के ज्ञान को निर्मल करने से, अज्ञान और मोह के स्वाम से तथा राग और द्वेष का क्षय करने से एकान्त मुद्रा स्वरूप मोक्ष प्राप्त होता है।

( १३ )

सद्गुरु तथा अनुभवी वृद्धों की सेवा करना, मूर्खों के ससंग से दूर रहना, एकान्त चित्त सन्-दास्यों का अभ्यास करना और उनक गम्भीर अर्थ का चिन्तन करना, और चित्त में एतिस्रप अटल शक्ति प्राप्त करना, यह निश्चयस् ( मोक्ष ) का मार्ग है।

x                      x                      x                      x                      x

( १४ )

साधक साह्यर आदि के प्राप्त होने पर अनिमान न करे और न मिलन पर शोक न करे।

( १५ )

आन्तरमिच्छे मियमेसणिज्ज,  
 सहायमिच्छे निउण्णत्थ-बुद्धि ।  
 निनेयमिच्छेज्ज विनेग जोग्ग,  
 समाहिंशमे समणे तवम्सी ॥ [ उक्त अ ३२ ]

( १६ )

न वा लभेज्जा निउण्ण सहाय,  
 गुणाहिय वा गुणयो सम वा ।  
 पक्को वि पावाड विउज्जयत्तो,  
 विहरेज्ज कामेसु असउज्जमाणे ॥ [ उक्त अ ३३ ]

( १७ )

लज्जा - दया - मज्जम - यमचेर,  
 फल्लाणभाणिम्म निसोहि-टाण । [ उक्त अ ३४ ]

( १८ )

सोही उज्जुय भूयम्स । [ उक्त अ ३५ ]

( १९ )

पगथो विग्ग उज्जा पगथो य पयत्तण ।  
 असज्जमे नियत्ति च, सज्जमे य पयत्तण ।  
 [ उक्त अ ३६ गा २ ]

( १५ )

समाधि की दृष्टि रखने वाला तपस्वी धमण परिमित तथा शुद्ध आहार मद्य कर, निपुण बुद्धि वाले तत्त्व ज्ञानी साधु की शोत्र करे, और ध्यान करन योग्य एकांत स्थान में निधान कर ।

( १६ )

यदि अपने से गुणों में अधिक या समान गुण वाला साधु न मिले तो पाप कर्मों का परि त्याग कर तथा काम भोगों में सबंध अनामक रहकर अकेला ही निधरे । परन्तु दुरागरी का कभी भूल कर भी मग न करे ।

( १७ )

ऊज्जा, दया, सयम और मद्भवय—ये चारों सुमुष्ट साधक के लिए विशुद्धि के स्थान हैं ।

( १८ )

मरुत आत्मा की ही शुद्धि होती है ।

( १९ )

एक ओर से निवृत्ति कानी चाहिए और दूसरी ओर से प्रवृत्ति असयम से निवृत्ति और सयम में प्रवृत्ति करना ही सम्यक चारित्र्य है ।

×

×

×

×

×



( २० )

१ वि मुडिण्य समगो, न श्रौंकारेण वभणो ।  
नाखेण मुणी होई तवेण होइ तावसो ॥

( २१ )

समयाए समणो हो, वभनेरेण वभणो ।  
मोखेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥

( २२ )

कम्मुणा वभणो होइ, कम्मुणा होइ गतिश्रो ।  
वदसो कम्मुणा होइ, सुदो हउइ कम्मुणा ॥

[ उक्त च २२ गा ३१ ३२ ३३ ]

( २३ )

सकख सु दीसइ तत्रोविसेसो,  
न दीसइ जाइविसेस कोई ।

[ उक्त च २२ गा ३० ]

x

x

x

x

( २४ )

नदिथ कालस्स यागमो ।

[ भाषा सु १ च २ उ ३ ]

( २० )

गिर मुटा लेने मात्र से कोई भ्रमण नहीं होता, 'ओम्' का पाठ कर लेने मात्र से कोई व्याकरण नहीं हो जाता निर्गुन बन में रहने मात्र से कोई मुनि नहीं होता और कुशा के बने वस्त्र पहन लेने मात्र से कोई तपस्वी नहीं हो सकता ।

( २१ )

समता से भ्रमण है, अज्ञान से व्याकरण होता है, ज्ञान से मुनि होता है, और तप से तपस्वी बन जाता है ।

( २२ )

मनुष्य कर्म से ही व्याकरण होता है, कम से ही चतुर होता है, कम से ही वैरप होता है और अपने कृत कर्मों से ही शूद्र होता है

( २३ )

तपस्या का प्रभाव तो परमेश्वर दिखावा देता है, मगर जाति की कोई विशेषता मर नहीं आता ।

×                    ×                    ×                    ×                    ×

( २४ )

शूल नहीं टल सकती ।”

( २५ )

जीविय त्रिभिर्येण, ममसु नो वि पत्यण ।  
दुत्थो वि न सजेज्जव, जीविय मरथे तहा ॥

[ भाषा धृ १ अ ८ उ ८ ]

( २६ )

इ अग्दे ' के प्राण' ' ज्य पि अभाहे चरे ।  
मम इम परिचया, अलं पु-गुत्तो पग्गिणए ॥

[ भाषा धृ १ अ १ उ १ ]

( २७ )

“धुणे मरीर,  
कमेहि अण्णग,  
अरेणि मपण ॥”

[ भाषा-धृ १ अ ३ उ १ ]

x x x x

( २८ )

मत्ति मेणित्त पटिण ।

[ भाषा-धृ १ अ १ उ १ ]

( १५ )

साधक न तो जीवित रहने की इच्छा करे और न मरने की ही इच्छा करे। और ही मरण में से किसी में भी चलाइए रह

( १६ )

साधक !

क्या घबराए ? और क्या चिन्ता करे ?  
 बातों से निर्लिप्त रह कर विद्या, धर्म,  
 हास्य, कुतूहल आदि को अपने हितों के  
 पथ में रखो और लोगों को सहायता  
 कर समय का सदुपयोग

( १७ )

साधक !

उम्र तपस्वियों के गान्धर्वों पर  
 कर दास्य और धर्म के पथ में  
 धर्म के

x

x

x

x

( १८ )

विद्येऽपि नान्यथा विद्यते

( २६ )

गुह्येति सह ससगा,  
दास कीड च धञ्जए ।

[ उच० अ० १ गा० ३ ]

( ३० )

वसे पुम्कुन् रिन्च,

[ उच० अ० ११ गा० १४ ]

( ३१ )

निष्ठिमस न म्माइज्जा ।

[ उच० अ० ८ गा० ४० ]

( ३२ )

मया गोम निरज्जए ।

[ उच० अ० ८ गा० ४० ]

( ३३ )

तो निरहवेज्ज वीरिय ।

[ चाण० अ० १ अ० ५ उ० ३ ]

( ३४ )

एने एन समाधरे ।

[ उच० अ० १ गा० ३१ ]

( २६ )

पुत्र लोगों के ससुरों से बचो, उनके साथ  
हमो और विनोद मत करो ।

( २७ )

निरन्तर गुरुकुल में निवास करना चाहिए ।

( २८ )

पीठ का भाव अर्थात् सुगली न खाओ ।

( २९ )

भूट-कपट से दूर रहो ।

( ३० )

अपने सामर्थ्य का अपलाप मत करो ।

( ३१ )

जो कार्य जिस समय करना है  
उसे उसी समय पर करो ।

( ३५ )

ज सेय त समायरे ।

[ दश अ ४ गा ११ ]

( ३६ )

अहा अतो तहा वारि,

जहा वारि तहा अतो ।

[ भाषा अ १ अ १ उ २ ]

( ३७ )

पमछे बरिया पास,

अपमछे परिव्यर ।

[ भाषा अ १ अ २ उ १ ]

( ३८ )

वहेसो पासगम्म नरिय ।

[ भाषा १ अ १ उ १ ]

( ३९ )

जहा पुरगम्म कयद,

तहा बुद्धम्म कयद,

जहा बुद्धम्म कयद ।

( ३२ )

जो श्रेयस्कर हो, उसी का आचरण करो ।

( ३६ )

जैसे भीतर वैसे बाहर, और जैसे बाहर  
वैसे भीतर । अर्थात् अपना विचार, उच्चार  
और भाचार एक रूप रखो ।

( ३७ )

प्रमाद करने वाला धर्म से पराङ्मुख होना है,  
इसलिए साधक अग्रमत्त होकर विधरे ।

( ३८ )

गदरी के जिण किसी उपदेश की आवश्यकता नहीं है ।

( ३९ )

यह उपदेश जिस प्रकार धनवान् के जिण है,  
उसी प्रकार गरीब के जिण भी है, और जिस  
प्रकार रंक के जिण है उसी प्रकार राजा के  
जिण भी है ।



समाप्त

